RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2018-20 प्रकाशन तिथि 1 जनवरी 2018

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका जनवरी 2018

मूल्य ₹ 50

खत

सफेद बकरे ने काले बकरे को एक खत भेजा।
काले बकरे ने पढ़ने से पहले ही उसे खा लिया।
फिर, "हम्म," उसने सोचा, "एक खत लिखना ठीक होगा"-
प्यारे सफेद बकरे,
तुमने जो खत लिखा था
उसमें क्या था?

काले बकरे ने सफेद बकरे को एक खत भेजा।
सफेद बकरे ने पढ़ने से पहले ही उसे खा लिया।
फिर, "हम्म," उसने सोचा, "एक खत लिखना ठीक होगा"-
प्यारे काले बकरे,
तुमने जो खत लिखा था
उसमें क्या था?

मादो मिचियो

जापानी से अंग्रेज़ी में अनुवाद- आर्थर बिनार्ड
अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद- सजिता नायर

चित्र : इशिता देबनाथ बिश्वास

नया साल मुबारक!

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 376 जनवरी 2018

चित्र : कनक शशि

इस अंक में

2 खत - मादो मिचियो
4 26 जनवरी - डॉ. भीमराव अम्बेडकर
6 मिठाई खाओ, मगर बाँटकर - कुमकुम रॉय
10 उधारी - छत्तीसगढ़ के छात्रों का सम्मलित अध्ययन
13 नाचघर- ऊपर चले रेल का पहिया... - प्रियम्वद
20 दावत- रोशनी आर्या
23 मेरा पन्ना
28 बीच समुन्दर: एक खोज - अदिति पन्त
32 बाबूलाल होटल में लम्बे डग. .. - विनोद कुमार शुक्ल
37 मेरा पन्ना
38 मुझे लगता है कि मैं उड़ सकती हूँ - किरण कनौजिया
42 माथापच्ची
43 चित्र पहेली - कविता तिवारी
44 लोहा - एकान्त श्रीवास्तव

आवरण चित्र
शहीद स्कूल,
रायपुर, के छात्र

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

वितरण
झनक राम साहू

विशेष सहयोग - इकतारा बाल साहित्य केन्द्र

सहायक सम्पादक
सी एन सुब्रह्मण्यम्
कविता तिवारी
सजिता नायर
भवानी शंकर
रुद्राशीष चक्रवर्ती

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

सहयोग
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर
कनक शशि

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी
accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

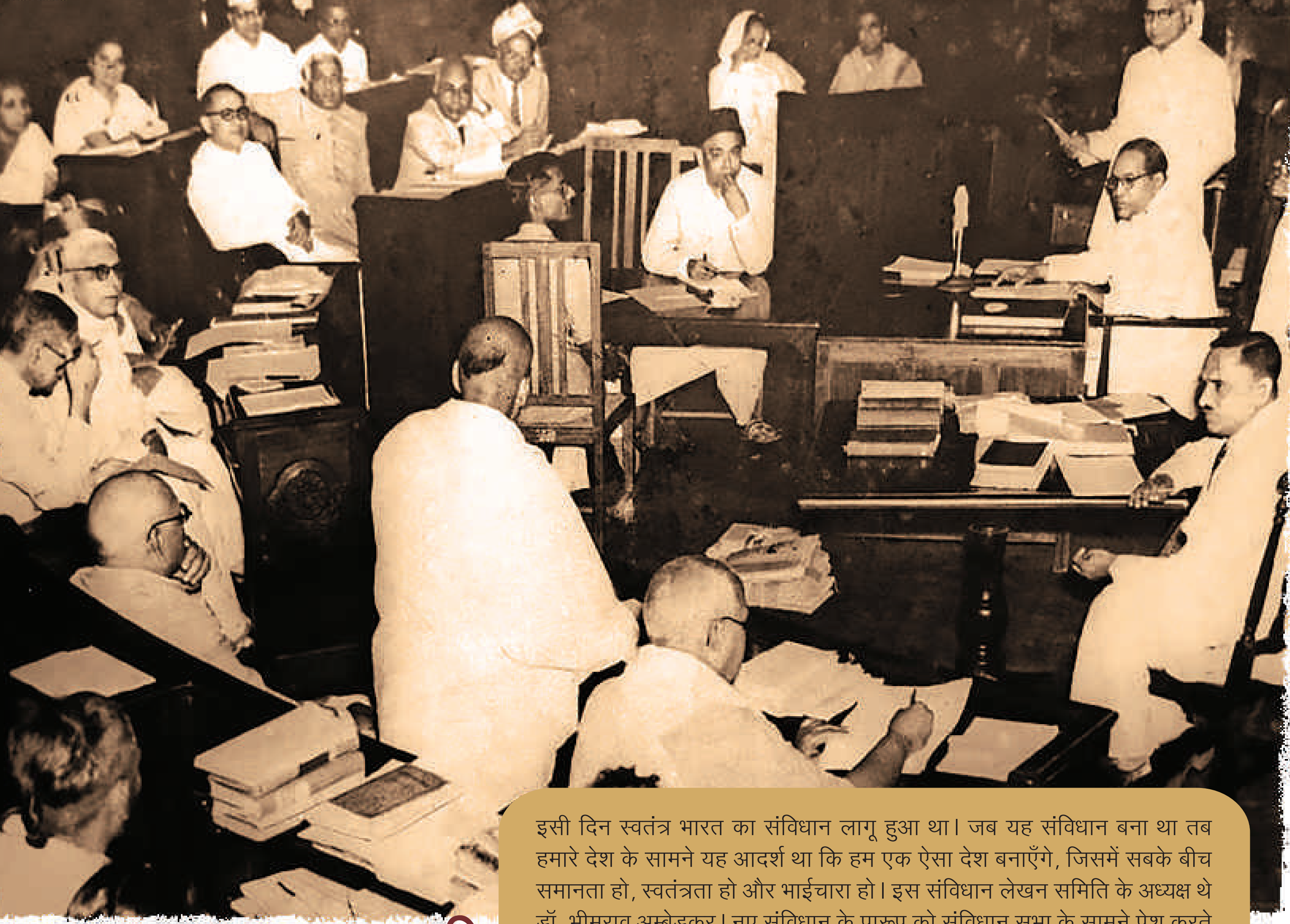

इसी दिन स्वतंत्र भारत का संविधान लागू हुआ था। जब यह संविधान बना था तब हमारे देश के सामने यह आदर्श था कि हम एक ऐसा देश बनाएँगे, जिसमें सबके बीच समानता हो, स्वतंत्रता हो और भाईचारा हो। इस संविधान लेखन समिति के अध्यक्ष थे डॉ. भीमराव अम्बेडकर। नए संविधान के प्रारूप को संविधान सभा के सामने पेश करते हुए 24 नवम्बर 1949 को उनके द्वारा दिए गए भाषण के कुछ अंश पढ़ें –

26 जनवरी

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

"हमें याद रखना होगा कि हम राजनीतिक लोकतंत्र से ही संतुष्ट न हो जाएँ। हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र में बदलना ज़रूरी है।... सामाजिक लोकतंत्र माने क्या है? इसका मतलब है ऐसी जीवन शैली जो स्वतंत्रता, समानता व भाईचारे को जीवन के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करती हो। स्वतंत्रता, समानता व भाईचारे के सिद्धान्त .. को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। बराबरी के बगैर आज़ादी चन्द लोगों के बाकी पर वर्चस्व को पैदा करेगी, जबकि बगैर आज़ादी के बराबरी व्यक्तिगत पहल में बाधक बनेगी। बगैर भाईचारे के, आज़ादी और बराबरी हकीकत नहीं बन सकती। ...

हमें यह बात स्वीकार करनी होगी कि भारतीय समाज में दो चीज़ों की मौजूदगी नहीं है। इनमें से एक है समानता। सामाजिक धरातल पर देखें तो भारतीय समाज असमानताओं का समाज है। जहाँ कुछ लोगों के पास अथाह धन है तो वहीं बहुत से लोग गरीबी में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 के दिन हम अन्तर्विरोधों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में तो हमारे पास समानता होगी पर सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी।

राजनीति में तो हम 'एक व्यक्ति एक वोट, सभी वोटों का समान मूल्य' के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेंगे पर सामाजिक और आर्थिक जीवन में, अपने सामाजिक और आर्थिक संरचनाओ के चलते, 'एक व्यक्ति - समान मूल्य' के सिद्धान्त को नकारते रहेंगे। हम कब तक ऐसे अन्तर्विरोधों का जीवन जीते रहेंगे? हम कब तक सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारना जारी रखेंगे? अगर हमने ऐसा और अधिक समय तक किया, तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डाल रहे होंगे। हमें इस अन्तर्विरोध को जल्द से जल्द मिटाना होगा, नहीं तो असमानताओं के शिकार लोग इस संविधान को ही उखाड़ फेकेंगे जिसे इस संविधान सभा ने इतनी मेहनत से तैयार किया है।

दूसरी जिस चीज़ की कमी हमारे समाज में है, वह है भाईचारे की भावना। भाईचारा माने क्या है? भाईचारे का मतलब है कि यदि भारतीय लोग एक हैं तो उनके बीच एक साझा भाईचारे की भावना का होना। यह सिद्धान्त एकता को बढ़ाता है और सामाजिक जीवन को मज़बूत करता है। पर इसे हासिल करना कठिन है।... हज़ारों जातियों में बँटे लोग भला एक राष्ट्र कैसे हो सकते है? जितनी जल्दी यह बात हम समझ लें कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभी हम एक राष्ट्र नहीं हैं, उतना ही हमारे लिए बेहतर होगा। क्योंकि तभी हम राष्ट्र बनने की ज़रूरत को बेहतर समझ पाएँगे और इस उद्देश्य को हासिल करने के तरीकों और साधनों के बारे में सोच पाएँगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति कठिन है।... जातियाँ राष्ट्र-विरोधी हैं। पहला कारण तो ये कि वे सामाजिक जीवन में अलगाव को बढ़ावा देती हैं। दूसरा वे एक जाति और दूसरी जाति के बीच ईर्ष्या और असहिष्णुता को बढ़ाती है। अगर हम सच में राष्ट्र बनना चाहते हैं तो हमें इन सब मुश्किलों को पार करना होगा। क्योंकि भाईचारा यथार्थ तभी हो सकता है जब राष्ट्र मौजूद हो। और बगैर भाईचारे के समानता और स्वाधीनता महज़ दिखावा होगीं।

आगे हमारे दायित्वों के बारे में ये मेरे विचार हैं। यह बात कुछ लोगों को अच्छा नहीं लग रहा होगा। मगर इसे कौन नकार सकता है कि इस देश में राजनैतिक सत्ता लम्बे समय से कुछ लोगों का एकाधिकार रहा है और अधिकांश

संविधान का एक पेज,
संविधान की डिज़ाइन व चित्रण का काम
मशहूर चित्रकार नन्दलाल बोस ने किया था.

लोग बोझ ढोने वाले पशु या शिकार ही बने रहे हैं।... समाज के वंचित वर्ग शासित होने से तंग आ चुके हैं। वे अपने आपना जीवन खुद नियंत्रित करना चाहते हैं। वंचित लोगों के बीच इस भावना को वर्ग संघर्ष या युद्ध में तब्दील होने नहीं देना है। ऐसे होगा तो हमारे घर में फूट पैदा हो जाएगी और विध्वंसकारी होगा। इससे बचने के लिए जीवन के हर क्षेत्र में समानता और भाईचारा स्थापित करना होगा।

अगर हम चाहते हैं कि जिस संविधान में हम लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा शासन के सिद्धान्त को अंकित किया है, को बचाकर रखें तो हम निश्चय करें कि हम उन बुराईयों को पहचानने में देर न करें जो हमारे रास्ते में हैं। और उन्हें दूर करने में कमज़ोर न रह जाएँ। ताकि लोग यह विचार करने न लगें कि लोगों के लिए शासन लोगों द्वारा शासन से बेहतर है। देश सेवा का यही एक तरीका है। मैं इससे बेहतर कोई तरीका नहीं जानता हूँ।"

(अँग्रेज़ी से अनुवाद- शुभनीत कौशिक)

मिठाई खाओ, मगर बाँटकर

कुमकुम रॉय

बौद्ध परम्परा के अनुसार महात्मा बुद्ध ने इस जन्म से पहले अनेक बार और अनेक रूप में जन्म लिया था। इन जन्मों में उन्हें 'बोधिसत्त' कहा जाता था। प्राचीन बौद्ध संकलन (जातक-अत्थ वण्णना) जिन्हें आमतौर पर जातक कथाएँ कहते हैं, में उनके इन जन्मों की रोचक बातें हैं।

इस कॉलम में हम ऐसी ही पुरानी कहानियाँ पेश करते हैं...

यह कहानी एक कंजूस सेठ और मोग्गलायन नामक थेर के बारे है। (जो बौद्ध भिक्षु बहुत ही ज्ञानी और गुणी थे, उन्हें थेर कहा जाता था)।

सुना जाता है कि राजगीर (आधुनिक बिहार में) के पास शर्करा नामक एक छोटा शहर था, जहाँ एक सेठ रहता था, जो अस्सी करोड़ सोने के सिक्कों का मालिक था। उसका नाम था मस्सरी कोसिक। वह किसी को एक घास के सिरे पर लगे एक तेल की बूँद तक दान में नहीं देता था। और खुद भी अपनी धन-दौलत का भोग नहीं करता था। इस तरह से उसके धन-दौलत से न उसके बेटे-बेटी और न तो ब्राह्मण या अन्य सन्यासियों का कोई फायदा होता था। राक्षसों द्वारा सुरक्षित तालाब की तरह कोई भी उसके सम्पत्ति को छू भी नहीं सकता था।

एक दिन सुबह उठकर महात्मा बुद्ध ने सोचा, 'दुनिया में कौन अब ज्ञान प्राप्ति के लिए तैयार है?' उनका ध्यान मस्सरी कोसिक पर गया। उन्होंने सोचा, "इसे शिक्षा देकर ज्ञान मार्ग में लाया जा सकता है।"

दूसरे दिन सेठ राजा से मुलाकात करने के लिए राजगीर गया। लौटते वक्त उसने एक गरीब किसान को देखा जो सड़क के किनारे बैठकर खुशी से एक मिठाई खा रहा था। यह देखकर सेठ के मन में भी मिठाई खाने की इच्छा हुई, लेकिन साथ-साथ उसने सोचा, 'अगर मैं मिठाई खाऊँ तो घर के सब लोग मिठाई माँगेंगे। इसमें बहुत सारा अनाज, घी और गुड़ बरबाद होगा। इसलिए मेरे चाहत को अपने मन में ही समेट लूँगा – किसी को कुछ नहीं बताऊँगा।'

यह सोचकर उसने अपनी इच्छा को अपने दिल में ही छुपाकर रखा। वह किसी को कुछ न कहकर पहले जैसे चलते रहा परन्तु धीरे-धीरे उसका शरीर कमज़ोर हो गया और चमड़ी पर नसें रस्सी जैसे दिखने लगीं। इस हालत में वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया, लेकिन तब भी किसी को कुछ नहीं बताया। तब उसकी पत्नी ने पास आकर बैठकर, पीठ पर मालिश करते-करते पूछा, "क्या आपको कोई बीमारी हुई है?" सेठ ने जवाब दिया, "नहीं।"

"तो क्या राजा आपसे नाराज़ है?"

"नहीं। राजा क्यों नाराज़ होगा?"

"तो फिर क्या आप कुछ खाना चाहते हो?" इस सवाल को सुनकर सेठ चुप रहा। उसे लगा कि अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए पैसा फिजूल खर्च हो जाएगा। पत्नी ने सोचा, 'जब चुप हैं, इसका मतलब है कि वह ज़रूर कुछ खाना चाहते हैं।'

फिर उसने दुबारा पूछा, "आप क्या खाना चाहते हो?"

तब सेठ ने झिझकते हुए कहा, "सही बात, मैं कुछ खाना चाहता हूँ।"

फिर उसने दुबारा पूछा, "क्या स्वामी?"

"मैं थोड़ा मिठाई खाना चाहता हूँ।"

"तो फिर अब तक क्यों नहीं बताया? मैं इतनी सारी मिठाई बना सकती हूँ कि पूरे शहर के लोग खाकर खतम नहीं कर पाएँगे।"

"शहर के लोगों को क्यों खिलाओगी? वे खुद मेहनत करके बनाकर खा सकते हैं।"

"तो फिर ठीक है, हमारे गली में जितने लोग हैं, उन्हें खिला दूँगी।"

"क्या तुम मेरे सब पैसे बरबाद करना चाहती हो?"

"अच्छा, तो फिर अपने घर के लोगों के लिए ही बनाऊँगी।"

"तुमने क्या धर्मशाला खोल रखा है?"

"अच्छा तो फिर हमारे बच्चों के लिए बनाऊँ?"

"बच्चों को इसमें लाने की क्या ज़रूरत है?"

"अगर आप यह भी नहीं चाहते तो मैं आपके और मेरे लिए इन्तज़ाम कर सकती हूँ।"

"क्या तुम अपना हिस्सा लेकर ही रहोगी?"

"ठीक है, मैं भी नहीं खाऊँगी - सिर्फ आप के लिए ही मिठाई बनाऊँगी।"

"यहाँ मिठाई बनाने से बहुत सारे लोग देख लेंगे, तुम थोड़ा अनाज, चूल्हा, कड़ाई, दूध, घी, शहद और गुड़ लेकर सातवें मंजिल में जाकर तैयारी करो, मैं वहीं अकेले बैठकर खाऊँगा।"

पत्नी ने कहा, "ठीक है।" यह कहकर उसने सब सामान इकट्ठा किया और दास-दासियों को छुट्टी देकर, सेठ को बुलाया। सेठ हरेक मंजिल चढ़ते-चढ़ते दरवाज़े पर ताले लगाते गया और सातवें मंजिल में भी, कमरे के अन्दर आकर कुण्डी चढ़ा दिया, और वहाँ बैठ गया। उसकी पत्नी मिठाई बनाने लगी।

उधर महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य मोग्गलायन से कहा, "राजगीर के पास एक छोटे शहर के सेठ अकेले बैठकर मिठाई खाने की कोशिश कर रहा है - किसी भी तरह से उसे और उसकी पत्नी को हमारे पास लेकर आओ। मैं 500 भिक्षुओं को वही मिठाई खिलाऊँगा।"

आदेश सुनकर मोग्गलायन सेठ के मकान के सातवें मंजिल तक पहुँच गए। वहाँ खिड़की के बाहर आसमान में मूर्ति की तरह खड़े नज़र आए। अचानक उन्हें वहाँ देखकर सेठ घबड़ा गया। उसने सोचा, 'मैं लोगों के डर से यहाँ सातवें मंजिल तक चढ़कर आया परन्तु यहाँ भी शन्ति नहीं है - देखो, भिक्षु खिड़की के पास खड़ा है।' गुस्से में आकर उसने कहा, "है भिक्षु, आसमान में खड़े रहने से कोई फायदा नहीं। यहाँ खड़े रहने से या फिर आस-पास घूमने से भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।"

यह सुनकर थेर आस-पास चक्कर लगाने लगे।

"चक्कर लगाने से कोई फायदा नहीं - यहाँ तक कि पद्मासन में बैठने से भी कुछ नहीं होगा।"

सुनते ही थेर पद्मासन में बैठ गए।

सेठ ने अब कहा, "वैसे बैठकर क्या होगा? खिड़की के देहरी पर खड़े होने से भी कुछ नहीं मिलेगा।"

यह सुनकर थेर वहीं आकर खड़े हो गए।

तब सेठ ने कहा, "वहाँ खड़े होने से भी कोई फायदा नहीं - अपने मुँह से धुआँ निकालने से भी कुछ नहीं मिलेगा।" यह सुनकर थेर ने मुँह से इतना धुआँ निकाला कि पूरा कमरा धुएँ से भर गया और सेठ की आँखों में काँटें जैसे चुभने लगे। वह सोचने लगा, 'अब तो थेर आग से पूरा मकान ही जला देगा।' उसने अपने पत्नी से कहा, "सुनो, एक छोटी सी मिठाई बनाकर इसे खिला दो, नहीं तो यह हमें नहीं छोड़ेगा।"

पत्नी ने एक छोटी मिठाई का गोला बनाकर कढ़ाई में डाला, लेकिन वह फूलकर इतनी बड़ी हो गई कि उससे कढ़ाई भर गई। सेठ ने चिल्लाया, "यह क्या कर रही हो? पूरी सामग्री डाल दिया क्या?" सेठ ने अब खुद मिठाई बनाने की कोशिश की, लेकिन फिर भी बड़ी-बड़ी मिठाई बनती गई।

हैरान होकर सेठ ने अपनी पत्नी से कहा, "जो मिठाई बनी है, उस में से एक इसको दे दो।" लेकिन जैसे ही उसने एक मिठाई उठाने की कोशिश की, सारी मिठाईयाँ एक साथ चिपक गईं। दोनों ने मिलकर मिठाइयों को अलग करने की कोशिश की, लेकिन असफल रहे। इतनी मेहनत करते-करते सेठ का पसीना छूटने लगा और बहुत प्यास भी लगी।

तब उसने अपनी पत्नी से कहा, "मुझे और मिठाई नहीं चाहिए। बरतन समेत सब कुछ भिक्षु को दान करो।" जब पत्नी बरतन लेकर थेर के पास पहुँची तब थेर ने उन्हें बौध धर्म के आदर्शों के बारे में बताया और दान करने का महत्व समझाया। तब सेठ ने उनसे कहा, "आप अन्दर आकर आसान पर बैठिए और मिठाई खाइए।"

थेर ने कहा, "महासेठ, महात्मा बुद्ध 500 भिक्षुओं को लेकर श्रावस्ती शहर में आपका इन्तज़ार कर रहे हैं। आप और आपकी पत्नी वहाँ जाकर उन्हें मिठाई और खीर खिलाइए।"

"लेकिन इतनी दूरी कैसे तय किया जाए?"

"मैं अपनी शक्ति से आप को ले जा सकता हूँ।"

सेठ ने कहा, "जी, कीजिए।"

थेर की शक्ति से वैसे ही हुआ।

सेठ और उसकी पत्नी को महात्मा बुद्ध के पास पहुँचा कर उन्होंने कहा, "अब भोजन का समय हुआ है।" तब महात्मा बुद्ध और बाकी भिक्षु आकर अपने आसनों पर बैठ गए। सेठ और उसकी पत्नी ने सभी को पानी दिया, और उन्हें मिठाई भी खिलाई। साथ-साथ घी, शहद और दूध भी पिलाया। सबको देने के बाद ही सेठ और उसकी पत्नी मिठाई खाने बैठ। परन्तु तब भी मिठाई का ढेर खत्म नहीं हुआ।

उसके बाद महात्मा बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया। सुनने के बाद वे वापस घर लौट गए और अपने सारे अस्सी हज़ार करोड़ सोने के सिक्कों का दान करना शुरू किया।

उधारी

-शहीद स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़ के
चौथी व पाँचवीं के छात्रों का सम्मलित अध्ययन

छत्तीसगढ़ के रायपुर शहर की एक मज़दूर बस्ती है, बिरगाँव। यहाँ पर एक स्कूल चलता है, शहीद स्कूल। इस स्कूल के चौथी और पाँचवीं के बच्चे अपने परिवार की समस्याओं की जाँच-पड़ताल किए। उनकी नज़र उधारी की समस्या पर पड़ी। उन्होंने पाया -

सभी मज़दूर और किसान उधारी से परेशान हैं। उधारी लेने के बिना हमारा जीवन नहीं चल पा रहा है। हमने पहले किसानों के उधारी के बारे में पढ़ा और कुछ किसानों से बातचीत की। फिर हमने घर में ही उधारी के बारे में सोचा और हमने अपने मम्मी पापा से पूछा कि वे कहाँ-कहाँ से उधारी लेते हैं। पता चला कि बैंक, समूह, जनलक्ष्मी योजना, बीसी जैसी जगहों से उधारी लेते हैं। राशन दुकान, चप्पल दुकान, कपड़ा दुकान, सोनार दुकान, फैन्सी दुकान, पड़ौसी आदि से भी लेते हैं। कर्ज़ में होने के कारण टेंशन बढ़ जाता है। कुछ लोग आत्महत्या भी कर लेते हैं और कुछ लोग गुस्से में अपने बच्चों को मारते हैं। कुछ लोग गाली-गलौच करते हैं, सामान को पटकते-फोड़ते हैं और दारू पीकर माँ को मारते हैं और झगड़ा करते हैं।

हमने पहले सोचा था कि छोटे किसान और मज़दूर ही उधारी लेते हैं और कर्ज़ में डूबे हैं। मगर फिर हमने पेपर में पढ़ा कि बड़े उद्योगपति भी बैंक से लोन लेते हैं। वो भी उतना ज़्यादा। हमने पढ़ा कि अडानी ने 72 हज़ार करोड़ रुपए उधार लिया है। मगर उसमें से 2 सौ करोड़ रुपए माफ किया गया है। हम मज़दूरों का कर्ज़ कभी माफ नहीं किया जाता है।

कर्ज़ तो सभी का है। मगर वो लोग आराम की ज़िन्दगी जी रहे हैं और हम लोग टेंशन की ज़िन्दगी जी रहे हैं।

लोन कम्पनी वालों से बातचीत

हम लोग स्कूल से कम्पनी के आफिस में गए और हमने वहाँ के भैया से सवाल पूछा तो हमें पता चला कि कम्पनी ज़्यादातर महिलाओं को ही पैसे देता है। 10-12 महिलाओं के समूह को लोन दिया जाता है। समूह में 15 हज़ार, 30 हज़ार और 40 हज़ार जैसे लोन लिए जा सकते हैं। गरीब लागों को ही लोन देते हैं। कम्पनी वाले साल भर में हर 100 रुपए पर 23 रुपए ब्याज लेते हैं और जो लोग टाइम से पटाते हैं उनका ब्याज 4 रुपए कम कर दिया जाता है।

छत्तीसगढ़ में यह कम्पनी चार साल से खुली है। इन चार सालों में उन्होंने 35 हज़ार लागों को लोन दिया है। बिरगाँव आफिस में 25 लोग काम करते हैं।

लोन लेने वाले से बातचीत –

सवाल : आप कम्पनी के समूह में कब से जुड़े हैं और कैसे?

जवाब : अप्रैल 2016 से जुड़ी थी। 10 झन के साथ। उन्होंने बोला कि अगर कोई हट जाता है तो बाकी 9 को मिलकर उस एक झन के पैसे को देना पड़ता है।

सवाल : आपने कितना लोन लिया है?

जवाब : 30 हज़ार रुपए लिया है। बीमा 9 सौ रुपए काटा है।

सवाल : आप हर महीने कितना पैसा पटाते हो?

जवाब : हर महीना हम 8 तारीख को सोलह सौ दस रुपए पटाते हैं। अगर हम आने में लेट हो जाते तो हमसे 50 रुपया फाईन लिया जाता है। ऐसे 24 किश्त भरना है।

सवाल : आपने किस चीज़ के लिए लोन लिया था?

जवाब : धन्धा खोल्हू कईके बोलबे तो ही दीही। मगर देखेल नहीं आए। हमन शादी के लिए दहेज बर ले हन।

सवाल : अगर आप पैसे पटा नहीं पाते तो क्या होता?

जवाब : वारंट निकलथे। और कोर्ट जाना पड़थे। 3 महीना जेल के अन्दर डाल्ही अउ करीब 1 लाख रुपए जुरमाना देल कहात रिहीस है। पलक पायल की माँ के पास वारंट भी आगे।

सवाल : आपको पैसे पटाने में क्या परेशानी होती है?

जवाब : पैसा नहीं रहाए त दूसर से लागा लेके पटाए ल पड़थे। जैसे ये महीना मोर पति भी ड्यूटी नहीं मिल गीस हे अउ मे भी नहीं गे हूँ। त पैसा पटाए म बहुत मुश्किल रिहीस।

माईक्रो फाईनांस और महिलाओं के समूह

- सी एन सुब्रह्मण्यम्

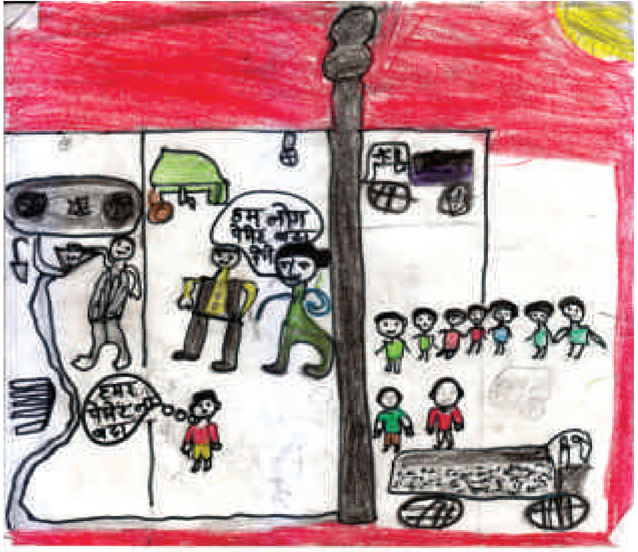

हम सबको किसी न किसी काम के लिए अधिक पैसों की ज़रूरत पड़ती रहती है। आम तौर पर उतना पैसा हमारे पास नहीं होता तो हमें किसी से उधार लेकर काम चलाना पड़ता है। ऐसी ज़रूरत गरीबों को तो पड़ती ही है बल्कि अमीर लोग व बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ भी उधारी पर चलती हैं। कम्पनी क्या, सरकार भी लोन लेकर खर्चा निकालती हैं।

अगर हमें कोई पैसा उधार देता है तो वह जानना चाहता है कि हम उसे पटा पाएँगे या नहीं। वह उन्हीं को लोन देता है, जिनके पास कुछ सम्पत्ति है या अच्छा कारोबार है। इस कारण सरकारों और कम्पनियों को लोन लेना आसान होता है। लेकिन जो बहुत गरीब हैं, जिनके पास कोई सम्पत्ति या पक्की नौकरी नहीं है – उनका क्या? उनको लोन मिलता तो है मगर बहुत कठिनाई से – अक्सर उन्हें बंधुआ मज़दूरी करनी पड़ती है और बहुत ऊँचा ब्याज देना पड़ता है। जैसे 100 रुपए पर 200 रुपए आदि। इस कारण गरीब लोग बेरहम साहूकारों के जाल में फँस जाते हैं। कर्ज़ आसानी से न मिलने के कारण अकसर वे अपना कारोबार (जैसे सब्जी ठेला, चाय दुकान) नहीं बढ़ा पाते हैं, बच्चों के फीस नहीं जमा कर पाते हैं या फिर बीमारी में अस्पताल का खर्च उठा नहीं पाते हैं। राशन, कपड़ा आदि भी उधारी में खरीदना पड़ता है।

पिछले 20 सालों में बैंकों व सरकारों को समझ में आया कि इस समस्या का समाधान खोजना न केवल गरीबों की मदद करने के लिए ज़रूरी है बल्कि इससे अर्थव्यवस्था में सुधार आएगा। आखिर लोग चीज़ें खरीदेंगे, अपना काम धन्धा बढ़ाएँगे तो अर्थव्यवस्था में तेज़ी आएगी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए माईक्रो फाईनांस की योजना तैयार की गई (माईक्रो मतलब बहुत छोटा और फाईनांस मतलब वित्त या धन)। इसमें गरीब महिलाओं को लोन देने पर ज़ोर दिया गया क्योंकि उन पर ही घर चलाने का ज़िम्मा रहता है और वे ज़िम्मेदारी से पैसे लौटा सकती हैं। इसके तहत गरीब महिलाओं के ऐसे समूह बनाए जाते हैं जिनमें सब लोग एक दूसरे को जानते हों। उन्हें लोन इस शर्त पर दिया जाता है कि अगर कोई एक भी अपनी मासिक किश्त जमा नहीं करेगा तो दूसरे सब मिलकर उसे पटाएँगे। इसके अलावा कम्पनियाँ लोन लेने वाली हर महिला का बीमा कराती हैं। अगर वह उधार पटाए बिना मर जाती है तो बीमा कम्पनी वह पैसे लौटा देती है। आपने ऊपर के उदाहरण में देखा होगा कि 30 हज़ार के लोन में से 900 रुपए बीमा के कटे थे।

वैसे अगर आपके पास ज़मीन है और आपको घर बनाने के लिए लोन लेना है तो आपको बैंकों से 100 रुपयों पर 8 से 9 रुपए ब्याज देना पड़ता है। लेकिन माईक्रो फाईनांस में गरीबों को 100 रुपयों पर 23 रुपए देने पड़ते हैं। एक कारण यह बताया जाता है कि ज़मीन वाले से पैसे वापस लेना ज़्यादा आसान है – – बैंक उसकी ज़मीन बेचकर उधार वसूल कर सकती है। लेकिन जिसके पास कुछ भी साधन नहीं है उसने पैसे नहीं चुकाए तो कुछ कर नहीं सकते हैं इसलिए उससे ब्याज ज़्यादा लिया जाता है। एक और कारण बताया जाता है कि गरीबों को छोटे-छोटे लोन दिलवाने के लिए आफिस और कर्मचारी रखना बहुत महँगा पड़ता है – इसलिए कम्पनियाँ खर्चा निकालकर मुनाफा तभी कमा सकती हैं जब ब्याज दर ऊँची होगी। ये जायज़ कारण हैं या नहीं यह तय करना कठिन है। जो भी हो, लेकिन गरीबों को भी ज़्यादा आसानी से और कम ब्याज दर पर उधार मिलना चाहिए। तभी वे साहूकारों और बँधुवा मज़दूरी के चंगुल से छुटकारा पा सकेंगे।

नाचघर की बारहवीं किस्त

ऊपर चले रेल का पहिया नीचे बहती गंगा मैय्या

प्रियम्वद

गंगा नदी बिठूर में थी। यह शहर से तीस किलोमीटर दूर था। कहते हैं कि बिठूर का पुराना नाम ब्रह्मावर्त था। वाल्मीकि का आश्रम यहीं था। राम ने सीता का परित्याग यहाँ के जंगलों में किया था। लव-कुश यहीं पले-बढ़े थे। 1857 में नाना साहब यहीं रहते थे। पुराने समय से यह पौराणिक तीर्थ था। नदी के किनारे जंगल था। शान्ति थी। हवाएँ हमेशा ठण्डी रहती थीं। शहर के बहुत से धनवानों ने यहाँ अपने फार्म हाऊस बना रखे थे। खासतौर से उन्होंने जो अपनी वृद्ध अवस्था गंगा किनारे एकान्त और शान्ति में भगवान भजन में बिताना चाहते थे।

दो सौ साल पहले शहर में पहली डाक व्यवस्था शुरू करनेवाले साहूकार की पुरानी हवेली यहाँ थी। वह बड़े महाजन थे। सब उनसे कर्ज़ लेते थे। अँग्रेज़ या नाना साहब भी। इसी नदी से उनके बजरे माल लेकर कलकत्ता तक जाते थे। उनकी हुँडियाँ पूरे देश में चलती थीं। उनके घर की छत के चारों गुम्बदों में अँधेरा होते ही आकाशदीप जल जाते थे। यह बाहर से आनेवाले मुसाफिर को बताने के लिए था कि यह उनका घर है। वह यहाँ आराम कर सकता है। अपनी हुँडी भुना सकता है। बाद में उनके परिवार के लोग शहर चले गए। हवेली को बदलकर फार्म हाऊस बना दिया गया। उन लोगों ने बहुत खुशी से बच्चों को पिकनिक के लिए फार्म हाउस दे दिया था। नदी पर घूमने के लिए दो बड़े बजरों का इन्तज़ाम कर दिया था। दाल-बाटी, चूरमा और इमरती का भोजन भी उनकी तरफ से था।

पिकनिक के दिन बहुत सुबह ही सब बच्चे एक जगह इकट्ठा हुए। साथ में चार टीचर्स थीं। दो चपरासी। बच्चे रंग-बिरंगे कपड़ों में थे। वे हँस रहे थे, चीख रहे थे। इधर-उधर भाग रहे थे। वे कटी पतंगों की तरह थे। दुकान पर लटके रंगीन रूमालों की तरह थे। इन्हीं में लाजवन्ती और मोहसिन भी थे।

इशारा मिलते ही हुड़दंग करते बच्चे बस में बैठने लगे। मोहसिन ने खिड़की के पासवाली दो लोगों की छोटी सीट ले ली। लाजवन्ती पीछे रह गई थी। मोहसिन ने खाली सीट पर रूमाल बिछा दिया। कुछ देर में लाजवन्ती बस में आई। उसने चारों ओर देखा। पीछे की तरफ मोहसिन बैठा था। उसने हाथ हिलाया। लाजवन्ती ने उसे देखा। वह जहाँ खड़ी थी वहीं सीट पर बैठ गई। कुछ देर तक मोहसिन इन्तज़ार करता रहा। लाजवन्ती नहीं आई। अपनी दोस्त के साथ हँस-हँसकर बात करती रही। उसने एक बार भी मोहसिन की तरफ नहीं देखा। मोहसिन अचानक उदास हो गया। अपना सिर खिड़की से टिकाकर वह बाहर देखने लगा। दिन अभी शुरू हुआ था। पास के ऊँचे पेड़ों के गोल मोटे तनों पर ओस का गीलापन चिपका था। आसमान बहुत साफ, बहुत नीला था। उस पर बेफिक्र परिन्दे तैर रहे थे। मोहसिन को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। उसका मन हुआ बस से उतरकर घर चला जाए। उसकी आँखों में पानी आ गया। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसने कसम खाई अब लाजवन्ती से कभी बात नहीं करेगा। कभी नाचघर नहीं जाएगा। नाचघर बिक जाए तो अच्छा है। अम्मी से कहेगा चादर में नाचघर बिकने की दुआ काढ़ दें। देर तक वह ऐसे ही बैठा रहा।

"लो।" उसे लाजवन्ती की आवाज़ सुनाई दी। उसने आँख खोली। सिर घुमाकर देखा हाथ में उसका रूमाल लिए लाजवन्ती खड़ी थी।

“क्या हुआ?” उसने मोहसिन को देखा। मोहसिन कुछ नहीं बोला। उसने इतनी सारी कसमें एक साथ खाई थीं। वह इतनी जल्दी इन्हें तोड़ना नहीं चाहता था।

“बोलो।” लाजवन्ती ने रूमाल उसके कोट की ऊपरी जेब में डाल दिया। पास की सीट पर बैठ गई। मोहसिन अचानक घूमा। उसने लाजवन्ती की कलाई पकड़ी। किचकिचा कर पूरा हाथ कन्धे से मोड़ने लगा।

“छोड़ो।” लाजवन्ती फुसफुसाई। अभी और बच्चों का इस पर ध्यान नहीं गया था।

“नहीं।”

“हुआ क्या?”

“वहाँ क्यों बैठीं तुम?” मोहसिन गुर्राया।

“मेरा मन,” लाजवन्ती हँसी।

“नहीं...तुम्हें हमेशा मेरे मन की बात माननी पड़ेगी।”

“क्यों?”

“क्यों?” मोहसिन ने एक क्षण सोचा, “क्योंकि मैं लड़का हूँ।”

“लड़का होने की ऐसी तैसी...नहीं मानूँगी।”

“क्यों?”

“क्यों...” कुछ क्षण लाजवन्ती ने सोचा, “क्योंकि तुम मुसल्ले हो,” वह फुसफुसाती हुई बोली।

एकदम से मोहसिन ने लाजवन्ती का हाथ छोड़ दिया। चुपचाप वह खिड़की की तरफ खिसककर बैठ गया था। उसने सलाखों में अपना मुँह धँसा दिया था।

“क्या हुआ?” कुछ देर बाद लाजवन्ती ने मोहसिन की हथेली छुई। मोहसिन की हथेली ठण्डी थी बिलकुल। कुछ खिड़की की हवा थी कुछ मोहसिन की नसों में बहता खून। मोहसिन कुछ नहीं बोला। उसने सलाखों में चेहरा और धँसा दिया। अब लाजवन्ती ने उठकर देखा। मोहसिन की आँखें गीली थीं। आँसू नहीं थे पर उनमें गहरी उदासी थी। पीड़ा...पराजय और अपमान था।

“बोलो...क्या हुआ?” लाजवन्ती की आवाज़ भर्रा रही थी। वह झुकी और उसने हथेली से मोहसिन का पूरा चेहरा अपनी तरफ घुमाया। मोहसिन ने अब उसे देखा।

“मार तो तुम रहे थे। रोना मुझे चाहिए था।” लाजवन्ती हँसी।

“अब कभी मत कहना।” मोहसिन ने लाजवन्ती की हथेली पकड़कर पास बैठा लिया।

“क्या?”

“यही...मुसल्ला।”

“मैं तो हमेशा कहती हूँ।”

“पर अब नहीं।”

“पता नहीं... क्यों, मैं डर जाता हूँ।” मोहसिन ने बाँह की कमीज़ से आँखें पोछीं। “आज अम्मी ने जब मटर के कबाब डिब्बे में रखे तो कहा, ‘लाजवन्ती को मत देना।’ ‘क्यों?’ मैंने पूछा। वह बोलीं, ‘हम मुसलमान हैं। वह पूजा पाठवाले घर की है।’ ‘वह गाजर का हलवा लाएगी। मैं तो खाऊँगा,’ मैंने कहा। ‘हमें फर्क नहीं पड़ता।’ अम्मी बोली, ‘पर उन्हें बहुत पड़ता है। वह बुरा मानेंगे...हर बात में इसका ख्याल रखना।’” मोहसिन चुप हो गया।

“पर चादर तो हम साथ चढ़ाएँगे?” कुछ देर बाद लाजवन्ती बोली।

“हाँ।”

“फिर?”

“फिर क्या?”

“जब साथ खा नहीं सकते तो चादर कैसे चढ़ा सकते हैं? डोरा कैसे बाँधेंगे? क्या भगवान और अल्लाह भी हमारी बात नहीं सुनेंगे क्योंकि हमने साथ मिलकर दुआ माँगी है?” मोहसिन चुप रहा। लाजवन्ती भी।

“तुम्हारा डिब्बा कहाँ है?” कुछ देर बाद लाजवन्ती ने पूछा। मोहसिन ने सामने लटके बैग से डिब्बा निकाल दिया। लाजवन्ती ने अपने बैग से अपना डिब्बा निकाला। अपना डिब्बा उसने मोहसिन के बैग में डाल दिया। मोहसिन का अपने बैग में।

"हम नाम बदल सकते हैं। स्कूल का कागज़ बदल सकते हैं तो खाना भी बदल सकते हैं, क्यों मोहन?" वह हँसी।

"तुम तो गाजर का हलवा खाओ।"

"और तुम भी तो हुस्ना हो...हमारे मटर के कबाब खाओ।" मोहसिन हँसा।

अब सब ठीक हो गया था। झटके से बस चल दी। बच्चों ने तालियाँ बजाई। वे हँस रहे थे। बात कर रहे थे। पूरी बस में शोर था। खिड़की के बाहर खेत थे। खेतों के बीच में कहीं-कहीं पानी के नन्हे तालाब बने थे। उनमें कमल उगे थे। किनारे पर बगुले थे। फसल की तैयारी में खेतों में हल चल रहा था। झोपड़ों के सामने बकरियाँ, मुर्गियाँ दिखती थीं। धूप में पाठशाला में बच्चे पढ़ रहे थे। कुछ बकरियाँ चरा रहे थे। बस निकलती तो वे हँसकर हाथ हिलाते। आसमान अब और ज़्यादा चमकदार हो गया था। हवा ठण्डी। धूप सुनहरी।

तभी बस के साथ उड़ते हुए एक छोटा नीलकण्ठ मोहसिन की खिड़की पर आकर बैठ गया। गरदन तिरछी करके वह दोनों को देख रहा था। उसका गला गहरे नीले रंग का था बाकी शरीर हल्का नीला। मोहसिन लाजवन्ती के कान में फुसफुसाया, "इसे पकड़ूँ?" जैसे नीलकण्ठ सुन लेगा तो उड़ जाएगा।

"हाँ...इसे पिकनिक पर ले चलेंगे।"

मोहसिन कुछ दिन पहले पार्क में चिड़िया का बच्चा पकड़ चुका था। अपनी हथेलियाँ जोड़कर उसने कटोरी बनाई। बहुत धीरे-धीरे खिड़की के पास सरकने लगा। नीलकण्ठ ने उसे देखा। वह हँसा। उसे भी खेल में मज़ा आने लगा। जैसे ही

चित्र : प्रशान्त सोनी

मोहसिन ने हाथ बढ़ाया वह कूदकर पूरी बस में फड़फड़ाया। फिर बीच में सामान रखने की जगह बैठ गया।

अब दूसरे बच्चों ने भी उसे देखा। "नीलकण्ठ...नीलकण्ठ।" चिल्लाए। नीलकण्ठ को मज़ा आने लगा।

"बेवकूफ को नहीं पता बस में बैठकर घर से दूर जा रहा है। कैसे लौटेगा?" मोहसिन बड़बड़ाया।

“चिड़िया कभी रास्ता नहीं भूलती। हर साल साइबेरिया से यहाँ तक आ जाती है।”

“पर यह बच्चा है। इसके माता-पिता ढूँढ रहे होंगे।”

“उड़ा देते हैं।” लाजवन्ती सीट से उठी। नीलकण्ठ के पास आई। “हुश्श...हुश्श।” उसने हाथ हिलाया।

“हुश्श...हुश्श।” नीलकण्ठ ने नकल करते हुए पंख फड़फड़ाए।

“क्यों उड़ा रही हो?” कुछ बच्चे चिल्लाए। “बैठा रहने दो।”

“नहीं...घर भूल जाएगा।”

“नहीं भूलूँगा।” नीलकण्ठ बोला, “तुम लोगों के साथ मैं भी पिकनिक चलूँगा। दाल-बाटी खाऊँगा। नाव पर घूमूँगा।”

“ज़रा-सा तो पेट है...ज़रा-सी चोंच है। कितना खाओगे?” हैरान लाजवन्ती ने पूछा।

“जितना है उतना खाऊँगा।”

“घर जाओ...सब ढूँढेंगे।” लाजवन्ती बोली।

“तुम भी तो नाचघर जाती हो? कोई ढूँढता है?”

“तुम्हें कैसे पता?”

“सब पता है...सबको बता दूँ।”

“तुम तो सचमुच बदमाश हो।” लाजवन्ती आगे आई। अपने सिर का स्कार्फ खोलकर उसने नीलकण्ठ की तरफ लहराया, “हुश्श...हुश्श।”

“सबको बताऊँगा...नाचघर, नाचघर और तुमसे कुट्टी।” नीलकण्ठ गुस्से से चिल्लाया और खिड़की से बाहर निकल गया। लाजवन्ती हँसती हुई वापस सीट पर बैठ गई। हिचकोले खाती बस तेज़ी से जा रही थी। कुछ देर में बस फार्म हाऊस पहुँच गई। फार्म हाउस बहुत पुराना था। बड़ा था। अन्दर एक लॉन के पास बस रुक गई। पहले टीचर उतरीं फिर बच्चे। लॉन में कुर्सियाँ लगी थीं। एक कोने में हरे नारियल के ढेर लगे थे। मेज़ पर उनको काटने और उनका पानी पीने का इन्तज़ाम था। सब बच्चों को कुर्सियों पर बैठाकर एक टीचर ने कहा कि वे अपने घर का खाना खा सकते हैं। बाद में डिहाइड्रेशन से बचने के लिए नारियल पानी ज़रूर पिएँ।

“क्या एक ही पीना है?” एक बच्चे ने पूछा।

“नहीं...जितने चाहे पिओ।” टीचर ने कहा। आगे बताया कि बोटिंग से लौटकर दाल-बाटी खाएँगे, फिर वाल्मीकि और सीता का आश्रम देखने चलेंगे। बच्चों को आधा घण्टे का समय दिया गया। बच्चों ने डिब्बे खोलकर आपस में जोड़ी या झुण्ड बना लिए।

लाजवन्ती और मोहसिन भी कुर्सियों पर बैठ गए। उन्होंने बैग से डिब्बे निकाले। मिलकर खाया। नारियल पानी पिया।

फार्म हाउस का मैनेजर भी वहीं था। वह सब इन्तज़ाम देख रहा था। उसने दो बड़े बजरों को तैयार करवा दिया था। दोनों बजरों पर दो-दो मल्लाह और एक गोताखोर थे। ये बड़े गोताखोर थे। हर बरसात में नदी में डूबते कुछ लोगों को ज़रूर बचाते थे। नाव के दोनों किनारों पर लकड़ी की रेलिंग लगवा दी थी। नावों को किनारे से ज़्यादा दूर जाने से मना कर दिया था। “नदी मन की तरह होती है...कोई नहीं जानता कब कहाँ कौन-सी लहर उठेगी,” उसने बच्चों से कहा था। “नाव पर ज़्यादा उछल-कूद मत करना।”

फार्म हाउस ऊँचाई पर था। नदी किनारे तक जाने के लिए पीछे सीढ़ियाँ बनी थीं। वहीं बड़ी बारादरी थी। वहाँ बैठकर देखने से ओर-छोर तक पूरी नदी दिखती थी। उसके थोड़ा नीचे बहुत बड़ी खुली जगह थी। वहाँ एक भट्टी बनी थी। उस पर दाल पक रही थी। थोड़ी दूर पर कण्डों पर बाटियाँ सिक रही थीं। आधी पकी इमरतियाँ बड़े बरतन में रखी थीं। नाव से लौटने पर उन्हें गरम चाशनी में पकाना बाकी था।

आधे घण्टे बाद बच्चे नाव पर जाने के लिए उठे। दो-दो की जोड़ी बनाकर, हाथ पकड़कर वे सीढ़ियाँ उतरकर किनारे आए। मल्लाहों ने सहारा देकर उन्हें नाव पर बैठाया। वे सब दो नावों में बँट गए। लाजवन्ती और मोहसिन भी एक नाव में बैठ गए। सब कुछ खूब अच्छी तरह देख लेने के बाद नावें खोल दी गईं।

अब्बू के मरने के बाद जब मोहसिन अम्मी के साथ अजमेर गया था, तब उसने रेल से नदी देखी थी। वह पहली बार पूरी नदी देख रहा था। उसे छू रहा था। उस पर घूम रहा था। नदी में था। उसने नदियों के बारे में पढ़ा था। वह जानता था नदियों ने ही इन्सानों को जन्म दिया था। उनके किनारे ही सभ्यताएँ बड़ी हुई थीं। सिन्धु...सरस्वती...वोल्गा...नील...गंगा...नर्मदा, दजला (टिगरिस)... फरात (यूफ्रेट्स)... मिसिसिपी...अमेज़न...गोदावरी...कृष्णा...डेन्यूब...। हज़ारों सालों से नदियों ने इन्सानों को जल दिया। जीवन दिया। यह पानी इसी तरह बहता रहा है। इनके किनारों से कितना कुछ गुज़र जाएगा। नदियों ने सब देखा है। पर अब इन्सान नदियों को सुखा रहा है। उन्हें कीचड़ बना रहा है। एक दिन नदियाँ सूख जाएँगीं। इन्सान मर जाएगा।

मोहसिन ने हथेली पर लाजवन्ती का हाथ महसूस किया। उसने सिर घुमाकर देखा। लाजवन्ती ने सामने इशारा किया। बहुत दूर बालू का बड़ा टुकड़ा था। उस पर दो चिताएँ चल रही थीं। उनकी लपटें काँप रही थीं। उठता काला धुआँ आकाश में जा रहा था। उनसे थोड़ी दूर पर झोपड़ियाँ बनी थीं। ज़मीन पर पत्तेदार हरी बेलें फैली थीं। पतली मेड़ बनी थीं। बालू पर खाट डाले कुछ लोग बैठे थे। एक औरत बीमार बूढ़े को नहला रही थी। एक बच्चा कछुए की पीठ पर रस्सी बाँध उसे हवा में नचा रहा था। एक कुत्ता पँजों में सिर घुसेड़े ऊँघ रहा था। तीन औरतें मछली पकड़ने का जाल ठीक कर रही थीं। दो आदमी नाव उलटी कर पेंट कर रहे थे।

तभी पुल से सीटी बजाती रेल निकली। बच्चे खुशी से चीखने लगे। उन्होंने रेल से नदी बहुत बार देखी थी। नदी से रेल पहली बार देख रहे थे। खिलौने जैसी रेल के डिब्बे गुज़र रहे थे। रेल ऊपर थी नीचे गंगा नदी थी। नदी पर वे सब थे। नावें पुल के पास आ गई थीं। कुछ लड़के नाव पर बैठकर पानी में मछली पकड़ने का जाल फेंक रहे थे। कुछ तो बच्चों को देखकर नाव के साथ तैरने लगे। कुछ रेल से फेंके सिक्के ढूँढने नदी में गोता मार रहे थे।

बहाव के साथ वे देर तक घूमते रहे। सूरज सिर पर आ गया। अब पानी का बहाव बढ़ रहा था। वापस लौटने में बहुत मेहनत थी। मल्लाहों ने आपस में इशारा किया। नावें वापस लौटने लगीं। वापसी में धारा में उलटा चलना था। दो गुनी ताकत, दो गुना समय चाहिए था। अब दो आदमी चप्पू चला रहे थे। धीरे-धीरे धारा को काटती नावें ऊपर की तरफ लौटने लगीं। नदी पर पूरे दो घण्टे हो चुके थे। बच्चे सुबह से उठे थे। थकान और भूख से निढाल हो रहे थे। लौटते हुए खालीपन और सन्नाटा था। सब चुप थे। चुप्पी का बोझ बढ़ रहा था। अचानक एक टीचर ने बंगाली गाना उठाया... पूरी लय पूरी आवाज़ के साथ...

ओ नोदीरे

एकटि कोथा शुधाई शुधू तोमारे

बौलो कोथाई तोमार देश

तोमार नेईकी चोलार शेष

ओ नोदीरे

(ओ री नदी, तुमसे एक बात पूछता हूँ बताओ तुम्हारा देश कहाँ है, क्या तुम्हारे चलने का कोई अन्त नहीं है? ओ री नदी।)

यह आवाज़ लौटती नाव से उठ रही थी। यह दूर घाट पर बनी सीढ़ियों...उन पर रखे तख्त, छोटे-छोटे मन्दिर, मन्दिरों के झण्डे, किनारे घूमते बन्दर...पीछे की चिमनियों, चिता के धुएँ को ढँक रही थी।

तोमार कोनो बाधोन नाई

तुमी घोर छड़ा थी ताई

एटू आछा भाटाय आर

एटू तो देखी जोआर ए

बौला कोथाई तोमार देश

तोमर नेईकी चोलार शेष

ओ नोदीरे

(तुम्हें कोई बन्धन नहीं है। क्या तुम्हारा घर छूट गया है? अभी तुम भाटा में हो, अब देख रहे हैं ज्वार में हो। बताओ तुम्हारा देश कहाँ है? क्या तुम्हारे चलने का कोई अन्त नहीं है? ओ री नदी)

अनायास ही मोहसिन की आँखें भर आईं। कोई विराटता उसे छू रही थी। उसे बहुत लघु होने का अहसास हुआ। चुप्प बस चुप्प रहे वह।

नावें किनारे पर आ गईं। सीढ़ियाँ चढ़कर बच्चे ऊपर लॉन में आ गए। मेज़ पर फौरन खाना लगाया जाने लगा। मोहसिन ने चारों ओर देखा। लाजवन्ती कहीं नहीं थी। वापस लौटकर उसने सीढ़ियों पर देखा। वहाँ भी कहीं नहीं थी। वह लौट आया। कुछ देर बाद लाजवन्ती आई। उसका चेहरा सफेद हो रहा था और साँसें तेज़ थीं।

"क्या हुआ?" मोहसिन ने पूछा। देर तक लाजवन्ती साँस लेती रही। फिर पीछे बारादरी की ओर इशारा किया।

"उधर बारादरी से मैंने झाँका तो एक कमरे में बूढ़ी औरत फर्श पर कपड़ा मार रही थी।"

"तो?"

"उसके साथ एक काली बिल्ली भी थी।"

"तो?"

"वह गा रही थी।"

"तो क्या हुआ?"

"वह गा रही थी, 'नसीम जागो क़मर को बाँधो...।' उसके बाल बिलकुल सफेद थे। मुँह पोपला था। आँखें सफेद। खाल लटकी हुई थी।" अब मोहसिन का चेहरा भी फक्क हो गया।

"फिर?" कुछ देर बाद बोला वह।

"फिर क्या?"

"किसी को मत बताना। सब दुखी होंगे।"

"हाँ...यही ठीक है।" लाजवन्ती ने सिर हिलाया।

खाना खाते समय, आश्रम घूमते समय, बस में भी वे चुप ही रहे। डर...दुख और अनिश्चय ने उन्हें चुप कर दिया था।

बस वापस चल दी। सब बच्चे निढाल हो गए थे। लाजवन्ती भी। मोहसिन के कन्धे पर सिर रखकर वह सो गई। मोहसिन ने देखा लाजवन्ती के चेहरे पर सीधी धूप पड़ रही थी। उसने एक हथेली उसके चेहरे से थोड़ा ऊपर रखकर छोटी से छाँह कर दी। मोहसिन खिड़की के बाहर देखने लगा। नदी उसकी आँखों में थी। वह बड़ा नीला आसमान...इतना सारा पानी...इतना सन्नाटा उसने पहली बार देखा था। नदी के साथ बहते अनन्त समय को देखा था। उसके अन्दर सुबह से जमी खला और उदासी खत्म हो गई। अब वहाँ नदी बह रही थी। नदी के किनारे रहना सुख है। नदी की तरह बहना जीवन है। नदी हो जाना जीवन का उद्‌देश्य है। मोहसिन के नन्हे मन ने बहुत बड़ी-बड़ी बातें सोच लीं। तभी एक जहाज़ शोर मचाता ऊपर से गुज़रा। मोहसिन की आँखों ने आखिर तक उसका पीछा किया। वह नहीं जानता था यह जहाज़ लन्दन जा रहा है। उसमें काला बच्चा भी बैठा है।

(जारी...)

दावत

रोशनी आर्या

रेहाना! ओ रेहाना!

अपना नाम सुनकर रेहाना किताब छोड़कर रेलिंग की तरफ़ भागी।

रेलिंग से झाँककर देखा तो वहाँ समीना थी।

उसे देखते ही रेहाना बोली, "क्या हुआ समीना?"

समीना हाथ से इशारा करते हुए बोली, "घर आजा!"

रेहाना बालकनी से घर के अन्दर गई तो घर में कोई नहीं था। उसने लाइट बन्द की और दरवाज़े पर ताला लटका कर चाभी को रेक पर रखे जूते के अन्दर छुपा दी। चप्पल पहनी और जल्दी-जल्दी नीचे उतर गई और भागी-भागी समीना के घर की तरफ़ चल दी। समीना के घर पहुँचकर उसने आवाज़ लगाई, 'समीना... समीना!'

आवाज़ सुनते ही समीना दहलीज़ पर आ खड़ी हुई और होंठो पर उँगली रखकर 'शु... शु... शु...' कर चुप कराने लगी।

समीना पहले से ही सजी-संवरी खड़ी थी। उसे देखते ही रेहाना समीना को ताली देते हुए बोली, "वाह तू तो पहले से ही तैयार है!"

कुछ देर तक समीना और रेहाना एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराती रहीं।

समीना का हाथ पकड़ रेहाना बोली, "हमारी पार्टी आज कहाँ है?"

समीना फट से बोल पड़ी, "शर्मा अंकल के पार्क में।"

यह सुनकर रेहाना बोली, "जब हम स्कूल से आ रहे थे तो वहाँ रंग-बिरंगा खूबसूरत टेंट लगा हुआ था।"

समीना, "हाँ वही टेंट, आज वहीं है हमारी... दावत!"

रेहाना, "वाह!"

समीना (आहिस्ता से), "अब तू चुप रह और अपने नए कपड़े पहन कर आ जा!"

रेहाना (मायूस होकर), "मेरे घर में कोई नहीं है। मैं नए कपड़े कहाँ से लाऊँ!"

समीना (कुछ सोचते हुए), "तू इतनी चिन्ता मत कर। तू मेरे कपड़े पहन ले, मेकअप तो हम रूकैया की छत पर कर लेंगे!"

रेहाना, "सुन, तेरे पास कुछ मेकअप का सामान है क्या?"

समीना, "जैसे क्या?"

रेहाना- "जैसे, लिपस्टिक, काजल, लाइनर, आइ शैडो, फाऊंडेशन, फ़ेस पाउडर, क्लिप! काजल तो ज़रूर ही देख लियो!"

समीना- "और सुन, तू मेरे कपड़े पहन ले!"

रेहाना ने कपड़े पहन लिए। समीना ने अपनी अम्मी की काजल की डिबिया ले ली। अपने सभी दोस्तों को बुलाकर रूकैया के घर की तरफ़ चल दी। रूकैया के घर पहुँचते ही आवाज़ लगाई, "रूकैया... ओ रूकैया...!"

रूकैया बालकनी से झाँकती हुई बोली, "क्या हुआ? शाम को इतना ज़रूरी काम क्या पड़ गया, जो इतनी दूर आना पड़ा!"

समीना ने उसे इशारों से नीचे आने को कहा। वह भागती हुई नीचे आ गई।

आते ही बोली, "ओए आज तेरा बर्थ डे है क्या? बड़ी सज-धज के खड़ी है!"

बस, दोनों ने मिलकर उसे सारी बात बता दी। बात सुनकर रूकैया नए कपड़े पहनकर और मेकअप करके उनकी टोली में शामिल हो गई।

मेकअप की परेशानी तो दूर हो गई थी पर अभी एक और परेशानी बाकी थी और उसका सामना रूकैया को करना था। मतलब रूकैया की अम्मी को मनाना। लेकिन यह भी सच बात है कि रेहाना की टोली हर परेशानी का सामना बड़े मज़े से करती है!

पहले तो वे यह कहकर कहीं भी निकल जाते थे कि आज सोनू की बहन की शादी में जा रहे हैं, रुकसाना की भाभी जान को लड़का हुआ है, सुन्नत अदा करना है...। उनका बहाना हर बार नया होता था। जैसे इसी बार समीना का एक नया बहाना है कि मनीषा के भाई का बरपन है, हम वहाँ जा रहे हैं। अरे बरपन? आप नहीं जानते, जब बच्चे को पहली बार सर मुंड कर जनेऊ पहनाया जाता है, इसी को बरपन कहते हैं।

रेहाना अभी भी चिन्ता में थी कि वह तो अम्मी से कहकर ही नहीं आई है।

समीना रेहाना से, "किस सोच में पड़ गई!"

रेहाना, "हम तो खुश हो रहे हैं... सबने अपनी अम्मी से पूछ लिया है, लेकिन मैंने अम्मी से तो कुछ पूछा ही नहीं!!"

समीना, "कोई बात नहीं, गलती तो तेरी अम्मी की है... पता नहीं तेरी अम्मी कहाँ चली जाती है। वह घर पर होती तो तू उनसे पूछकर आती। अब जब तू घर जाएगी तो अपनी अम्मी से कह दियो कि मैं मनीषा के भाई के बरपन में गई थी।"

सब शर्मा अंकल के पार्क पहुँचे। टोली टेंट के अन्दर घुस गई । बेबी पिंक और सफ़ेद रंग का यह

टेंट, उसी रंग के गुब्बारे से सजे हुए थे। टेंट के बीचो-बीच लगा डण्डा... जिस पर जलती सफेद लाइट टेंट को और सजा रही थी। शुरुआत में ही पानी की बोतल मयूर जग की तरह रखी थी, उसके साथ में ही रखा प्लेटों का टेबल और स्टील के बरतनों से ढ़का खाना कतार में लगा हुआ था। और आखिर में डी.जे. ...।

सबने सोचा कि अगर ऐसे ही सब देखते रहे तो लोगों को मालूम हो जाएगा कि हम यहाँ जबरन घुसे हैं। तभी सभी ने दिमाग लगाया कि डीजे पर नाचा जाए ताकि हम सब यहीं के जेनुइन लोग लगें। उनकी टोली डीजे पर नाचने लगी, पर सबका ध्यान खाने की तरफ ही था। इतने में ही अनाउंसमेंट हुआ कि खाना तैयार है...

यह टोली सबसे पहले खाने की ओर दौड़ी। सबने अपनी-अपनी प्लेटें उठाई और जिसको जो पसन्द था जैसे, शाही पनीर, छोले, चावल, बटर नान, दालमखनी इत्यादि से अपनी प्लेटें सजा ली।

रेहाना खाने में इतना मगन हो गई थी कि वह सब कुछ भूल गई थी। तभी उसकी नज़र एक आदमी केहाथ में बँधी घड़ी की तरफ गई, साढ़े दस बज चुके थे। तभी उसने अपने सभी दोस्तों को हाथ उठाकर बाय कहा और अकेली ही घर की तरफ़ चल दी।

मोहल्ले की सभी दुकानें बन्द हो चुकी थी। पूरी गली में सन्नाटे का साया था। सारे खंभे की लाइटें बन्द थी। रेहाना ने अभी पिछले दिनों ही किसी के गायब होने की खबर सुनी थी। वह सहमे-सहमे कदम से घर जा रही थी।

अचानक ही उसकी अम्मी दिख गई। उसकी अम्मी गुस्से में बावली हुए जा रही थी। वह रेहाना पर हाथ उठाने ही वाली थी कि रेहाना अम्मी से चिपट गई। अम्मी ने उसका हाथ पकड़ा और खींच कर उसे घर की तरफ ले गई।

घर पहुँचते ही भारी आवाज़ में वह बाली, "पता नहीं तू कहाँ-कहाँ घूमती रहती है! शाम के आठ बजे से ढूँढ़ रही हूँ तुझे! तू ख़ैर मना कि तेरे अब्बूजान की नाइट शिफ़्ट है। अगर उन्हें पता लग जाता कि तू अपनी छुटकी-छुटकी दोस्तों के साथ कहीं भी चली जाती है तो बेटी तू बहुत पिटेगी।"

रेहाना डर के मारे कोने में दुबक गई।

उसकी अम्मी बहुत गुस्से में थी। अम्मी उसका कान मरोड़ती हुई बोली, "अबकी बार कहीं जाने से पहले मुझसे पूछना भूलना मत, नहीं तो मैं भूल ही जाऊँगी कि तू छोटी बच्ची है! समझी!"

रेहाना, "अम्मी, भाई और उनके दोस्त भी तो इतनी रात में जाते-आते हैं।"

अम्मी गुस्से में, "जबान मत लड़ा, वह अपने दोस्तों के साथ जाते हैं। तू उनकी बराबरी करेगी क्या?"

रेहाना नज़रें झुका कर, "अम्मी, मैं भी तो अपने दोस्तों के साथ गई थी।"

उसकी अम्मी लम्बी आह भरती हुई उसके गोल-गोल गालों पर हल्का सा थप्पड़ थपड़ाते हुए बोली, "अबकी बार यह मत करियो, कहीं जाना होगा तो मुझसे पूछ ज़रूर लियो। मैं जाने से नहीं रोकूँगी।"

यह कहकर अम्मी मुस्कुराने लगी। अम्मी को मुस्कुराते देख रेहाना भी मुस्कुराने लगी!

रोशनी आर्या, उम्र 12 साल। राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नंबर 3 दिल्ली, के सातवीं कक्षा में पढ़ती है। रोशनी को लिखने में मज़ा आता है। पिछले तीन साल से अंकुर की नियमित रियाज़कर्ता है।

मेरा पन्ना

—अविनाश, अंक इण्डिया भोवापुर सेंटर, गाज़ियाबाद, उ. प्र.

साँप निकाला

मैं और मेरे चाचा नहर में मछली पकड़ने गए थे। फिर हमने नहर में जाल डाला और जब हमने जाल को निकाला तो उसमें साँप और मछली निकली। फिर साँप जाल से निकलने की कोशिश किया पर साँप जाल में ही मर गया।

—हिमांशी ध्रुव, चौथी, अजीम प्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़

—खुशी त्रिपाठी, तीसरी, मॉडल स्कूल गुड़गाँव हरयाणा

लालची राजा

एक बार एक राजा ने लड्डू को खाकर देखा। लड्डू बहुत स्वादिष्ट लगा। राजा लड्डू की दुकान को खरीदा। राजा को अच्छा लगा। राजा के सारे लड्डू खत्म हो गए। राजा को गुस्सा आया। राजा ने शक्कर की छह बोरी मँगवाई। और लड्डू बनवाए। कोई को भी लड्डू बनाना नहीं आता था। राजा ने उस दुकानदार को बुलाया। दुकानदार लड्डू बनाने लगा। राजा ने लड्डू खाया तो राजा को शुगर हो गया।

—करण, दूसरी, मुस्कान संस्था भोपाल, म. प्र.

शैतान

ना गीता बुरी है ना कुरान
ना हिन्दु बुरा है ना मुसलमान
भेजे में जो गुस्सा है तेरे
बुरा है वो शैतान

—शिवम शुक्ला,
आठवीं, मुक्तांगन मुम्बई महाराष्ट्र

—काबु, पाँचवीं, फलौदी, जोधपुर, राजस्थान

चाँद की शैतानी

हर रोज़ की तरह ये रात आई
उठाए अपना झोला
कुछ चमकती चीज़ें लाई
खाली, काले आसमान से धूल हटाई
और झोले से एक तारा निकाल
आसमान में चिपकाया
इस तरह वह बढ़ती रही
लगाती सारे तारे
और अन्त में उसके हाथ आया
वह बदमाश चाँद

रात ने चारों तरफ देखा
और जा लगाया एक कोने में
और रात अपना काम खत्म कर
लगी इधर से उधर घूमने
तभी छुप एक बादल आया
गया चाँद के पास
फिर चुपके से बोला
बैठ जा मेरी पीठ पर
और चाँद को शरारत सूझी
चढ़ बादल पर लगा घूमने
इस कोने से उस कोने
और लगा दौड़ाने तारों को
करते हुए शोर

हवा भी मौका पाकर
करने लगी शैतानी
मच गया ऐसा हड़कम्प
कि रात को गुस्सा आया
बोली अँधेरे को
चल मेरे साथ तू
और दौड़ी चाँद के पीछे
एक तूफान की तरह
और टकराते ही
हवा डोलती हुई गिरी
बादल वहाँ से भागा
और चाँद डर के मारे
दुबककर बैठा रहा
तारों के बीच

चित्र व कविता—युवराज सिंह, सातवीं, एडिलेट कावेंट स्कूल पटना, बिहार

—मनीषा गुर्जर, पाँचवीं, सवाई माधोपुर, राजस्थान

चिड़िया

—श्रुति गांधी, छटी,
प्रगत शिक्षण संस्था फलटण,
सतारा, महाराष्ट्र

हमारे घर के पीछे बगीचा है। बगीचे में पंछी आते हैं। उस बगीचे में कड़ीपत्तों का पेड़ है। उस पेड़ पर चिड़ियों का घोंसला है। हम घर से बाहर आते हैं तो चिड़िया की आवाज़ चिव-चिव आती है। घर के अन्दर जाते हैं तो चिड़िया की आवाज़ कम होती है।

मैं पेड़ के पास गई तो मुझे चिड़िया का घोंसला दिखाई दिया। घोंसले में चिड़िया के अण्डे थे। दो-तीन दिनों के बाद उस घोंसले में चिड़िया का बच्चा दिखाई दिया। मुझे लगा चुपचाप फोटो खींचूँ पर नहीं खींचा।

इतने में हवा-बारिश आई तो चिड़िया के पंख फड़फड़ाने की आवाज़ आई। वह बच्चा घोंसले के बाहर आया तो इधर-उधर देखने लगा। पेड़ के घोंसले के पास कोई भी कुछ भी ना करे इसलिए उसकी माँ चिव-चिव कर रही थी। वह बहुत चंचल थी।

दस-पन्द्रह दिनों के बाद बच्चे को पंख फड़फड़ाकर उड़कर जाते हुए मैंने देखा। मन में लगा कि अब कब कोई चिड़िया अपना घोंसला बनाने के लिए हमारा घर चुनेगी।

अगर मेरे पंख होते

—हृदान सोलंकी, दूसरी, उज्जैन, म. प्र.

अगर मेरे पंख होते तो
मैं हर जगह घूमता-फिरता
आकाश में तारों से मिलता
बादल पर अपना घर बनाता
अगर मेरे पंख होते
चाँद को मैं पकड़ लाता

दुनिया में सबसे आगे होता
कोई ना मुझे पकड़ पाता
धीरे-धीरे ऊपर जाकर
सूरज को छू लेता

बारिश जब होती तो
मैं पेड़ पर छुप जाता
धूप निकलती तो इन्द्रधनुष को
देख बहुत खुश हो जाता
लेकिन... काश अगर मेरे पंख होते

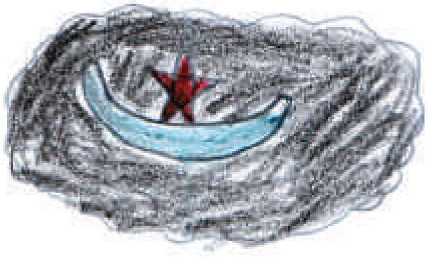

—वर्षा, पाँचवीं, रूम टू रीड हिमाचल प्रदेश

बीच समुन्दर: एक खोज

अदिति पन्त

प्रोफेसर आदिति पन्त समुद्र विज्ञानी हैं। उन्होंने समुद्री जीवों का अध्ययन पुणे विश्वविद्यालय में शुरू किया और 1973 में लंदन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की। फिर भारत आकर भारतीय तटीय समुद्रों का अध्ययन किया और अंटार्कटिका महाद्वीप के अध्ययन में भी शामिल रहीं। उनका प्रमुख काम प्लवक नामक समुद्री जीवों पर था। इनकी विशेषता यह है कि इनमें से कुछ पौधों की तरह सूरज की रोशनी से भोजन का निर्माण करते हैं। कुछ प्लवक प्राणियों जैसे पादपों के खाकर पचाते हैं। इसके लिए उन्हें खुले समुद्र से लेकर प्रयोगशाला तक लंबे समय काम करना पड़ा। वैज्ञानिक शोध को एक कैरियर के रूप में अपनाना एक महिला के लिए आसान नहीं था। आगे उनके जीवन के बारे में पढ़ें-

जब मैं करीब दस साल की थी तो माँ ने मुझे चावल, दाल और आलू की सब्ज़ी बनाना सिखा दिया था। मुझे तब तक इसे बनाने का अभ्यास करते रहना पड़ा जब तक कि मैं हर बार कुछ अच्छा न बना लेती। माँ का लक्ष्य यह नहीं था कि मैं खाने लायक चीज़ें बनाने लगूँ बल्कि यह था कि मेरे बनाए खाने में स्थिरता आ जाए। स्थिरता का मतलब 'हर बात पर बारीकी से ध्यान देना', 'जो कर रहे हो उसकी पूरी जानकारी होना', 'हर चीज़ को सही मात्रा में डालना' इत्यादि। लेकिन मेरे हाथ कभी उस रफ्तार से नहीं चल पाते थे जिस रफ्तार से मेरा दिमाग चलता था और मेरी माँ अफसोस के साथ खुद को यह दिलासा दे लेती थी, 'कम से कम इसे कभी भूखा तो नहीं रहना पड़ेगा!'

मुझे अक्सर ऐसा लगता है कि विज्ञान के मेरे कैरियर की बुनियाद यहीं पड़ी। हालाँकि मैं प्रायोगिक रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान में बहुत कमज़ोर थी। फिर भी, चीज़ों के पैटर्न को मैं अपने दिमाग में कुछ-कुछ समझ पाती थी। मुझे लगता है इस वजह से यह तय हो गया था कि विश्वस्नीय तथ्यों के लिए मैं मुख्य रूप से उपकरणों पर निर्भर रहूँगी चाहे वह खुले महासागर में नाइट्रेट के स्तरों के आँकड़ें हों या फिर मैनग्रोव के दलदलों में प्रकाश संश्लेषण की दरों के।

जिस व्यक्ति ने मेरे कैरियर के चुनाव को शायद सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वे मेरे पिताजी थे। उन्हें इन बातों में बहुत दिलचस्पी थी कि विभिन्न चीज़ें किस तरह और क्यों काम करती हैं और रात का खाना खाते वक्त हम लोग भाप के इंजन से लेकर तारों तक की बातें किया करते थे। खगोल शास्त्र, भौतिकी और रसायन शास्त्र से जुड़ी बातें हमारी रोज़ की चर्चाओं की हिस्सा थीं। हालाँकि मेरे पिता पेशे से तो वैज्ञानिक नहीं थे - बस वे तो

प्राकृतिक दुनिया के प्रति बहुत आकर्षित थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनके बच्चों ने विज्ञान का कैरियर चुना।

मेरे लड़की होने का मेरे कैरियर के चुनाव में कोई हाथ नहीं था। मेरी रुचि जीव विज्ञान में थी और मैं हमेशा से ही समुद्र से रोमांचित रही थी। हाइकिंग और ट्रेकिंग (लम्बी दूरी की पैदल यात्राएँ) की आदी होने की वजह से मैं ऐसा कैरियर चाहती थी जिसमें सोचने की ही नहीं बल्कि घूमने-फिरने की भी आज़ादी हो। जब मैं पुणे विश्वविद्यालय से बीएससी पूरा करने वाली थी उसी समय पिताजी के एक मित्र ने मुझे सर एलिस्टर हार्डी की किताब *द ओपन सी* दी। केम्ब्रिज के इस जीव विज्ञानी ने प्लवकों के जीवन को बारीकी से देखा था। इस किताब में उसी का वर्णन था। मुझे मेरी राह मिल गई थी!

माँ मुझसे हमेशा यह कहती थीं कि आगे की पढ़ाई के लिए विदेश जाना सम्भव नहीं है क्योंकि घर में सामान्यतः आर्थिक तंगी रहती थी। मगर जब मुझे यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई में पढ़ने के लिए अमरीकी सरकार की स्कॉलरशिप मिल गई तो हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब अपनी मास्टर्स की थीसिस के लिए विषय चुनने का समय आया तो मैंने महासागरीय प्लवक, खासकर उनकी प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया का अध्ययन करना चुना। प्लवक बेहद विविधता भरे जीवों का समुदाय है। प्लवकों का एक प्रकार है, पादप (वनस्पति) प्लवक जो प्रकाश संश्लेषण करते हैं क्योंकि वे सतह के नज़दीक होते हैं। कुछ प्राणि प्लवक, पादप प्लवक को खाते हैं और फिर इन प्लवकों को द्वितीयक स्तर के प्लवक तथा मछलियाँ खाती हैं और बैक्टीरिया पोषक तत्वों को वापस पादप प्लवक तक पहुँचाते हैं। यह सब कुछ ऐसी जलराशियों में होता है जो कई कारकों से प्रभावित होती हैं जैसे - घनत्व, सतही तनाव, तलीय स्थलाकृति, पवन की भौतिकी तथा जल पर पड़ने वाले पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के घूर्णन आदि।

मेरी एमएस की थीसिस पादप प्लवक समुदायों द्वारा की जाने वाली प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर थी। प्लवकों पर ऊष्ण कटिबन्धीय प्रकाश की तीव्रता के प्रभावों पर तथा पादप प्लवक से बैक्टीरिया को मिलने वाली कार्बन की मात्रा और उसकी प्रकृति पर मेरा विशेष शोध था। अपनी पीएचडी के लिए मैं लंदन यूनिवर्सिटी के वैस्टफील्ड कॉलेज चली गई और वहाँ की प्रयोगशाला में काम करना शुरू कर दिया।

प्रकाश संश्लेषण

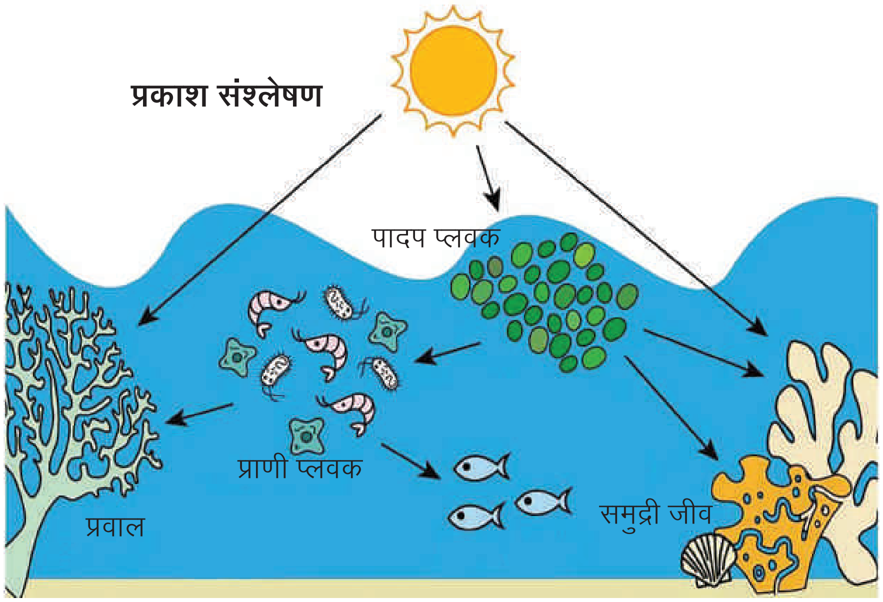

विदेश में अपनी पूरी पढ़ाई के दौरान मुझे एक व्यक्तिगत सवाल बहुत परेशान करता रहा: आगे क्या? जब मैं अपनी पीएचडी के प्रायोगिक कार्य को पूरा करने के करीब थी तो ऐसी कुछेक प्रयोगशालाएँ मेरे दिमाग में थीं, जहाँ काम करके मुझे बहुत खुशी होती। इस बीच मैं एक वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रोफेसर एन के पणिक्कर से मिली जो गोवा स्थित राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एनआईओ) के संस्थापक निदेशक थे। मेरे एक भारतीय साथी ने उनसे कुछ कटुता के साथ पूछा, "क्या भारत को वाकई हमारी ज़रूरत है प्रोफेसर?" (यह 1971-72 की बात है, हमारी पीढ़ी को ऐसा लगता था कि भारत को अपने युवाओं की खास परवाह नहीं थी।) डॉ. पणिक्कर थोड़ा गम्भीर होकर बोले, "मैं इतना जानता हूँ कि ऐसे किसी भी व्यक्ति के पास करने के लिए बहुत काम है जिसमें कलेजा हो। हाँ, यह तो निश्चित है कि भारत की तुलना में किसी दूसरी जगह आपको कहीं ज़्यादा वेतन मिलेगा।"

1973 में मैं भारत लौट आई तथा एक फेलोशिप के लिए आवेदन कर दिया। मैंने पक्की नौकरी, विश्व के प्रसिद्ध प्रयोगशालाओं में शोध के अपने सभी सपनों को त्याग दिया। ऐसा क्यों किया? मुझे आज भी पता नहीं। शायद पणिक्कर के चुनौती के कारण या फिर इस विचार के कारण कि मेरे विदेश में बस जाने से मेरे पिता निराश होंगे या मैं ऐसे लोगों को 'भारत को समझाते-समझाते' थक चुकी थी, जिन्होंने कभी अपने घर से बाहर कदम नहीं रखा था? लेकिन मुझे इस फैसले पर कभी कोई पछतावा नहीं हुआ।

अगले तीन साल यानी 1976 तक एनआईओ के हम लोगों ने मोटर बोट और मछली पकड़ने वाली देसी नाव से भारत का लगभग पूरा पश्चिमी समुद्र तट घूमा, वेरावल से लेकर कन्याकुमारी और मन्नार की खाड़ी तक। जब हमें रुकने का कोई स्थान नहीं मिलता था तो हम लोग समुद्र किनारे ही सो जाते थे। मुझे याद नहीं पड़ता कि इस दौरान मैं खाने-पीने को लेकर या फिर एकान्त न मिलने से कभी चिन्तित हुई। स्थानीय चाय की दुकानों पर जो भी मिल जाता था, हम खा लेते थे और यह अधिकांशतः भजिया तथा गुड़ वाली चाय होती थी। भौतिक चिन्ताओं से मुक्त होकर हमारी पूरी टीम ने, चाहे वह वैज्ञानिक हो, ड्राइवर या फिर विद्यार्थी, साझा उद्देश्यों को पूरा करने के लिए साथ मिलकर काम किया।

अक्सर टीम में मैं अकेली महिला सदस्य होती थी और स्थानीय ग्रामीण महिलाएँ अपने पतियों और भाइयों को यह पता लगाने के लिए भेजती थीं कि मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं थी! मेरे साथ होने वाले इस 'खास व्यवहार' के कारण मेरे साथी 'महिला वैज्ञानिकों' की बात छेड़कर मेरी बहुत टाँग खींचते थे। हालाँकि मुझे लगता है कि भीतर ही भीतर उन्हें इस बात से काफी राहत रही होगी कि उनहें कभी मेरी चिन्ता नहीं करनी पड़ी।

मैं अपने अधिकांश खाली समय में वहाँ की महिलाओं को अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में यह बताने की कोशिश करती थी कि हम लोग किस चीज़ की खोजबीन कर रहे थे। समय के साथ मुझे ऐसी शब्दावली में हमारे काम को समझाना आ गया जो उन्हें समझ में आ सकती थी जैसे कि मछली पकड़ना जो उनके रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ा बहुत ही अहम पहलू था। आम लोगों के सम्पर्क में रहने से मुझे अपने काम के महत्व पर भी ध्यान केन्द्रित करने में मदद मिली। वे बहुत ही ज़बरदस्त दिन थे। हमारी संस्था छोटी थी और वहाँ का माहौल दोस्ताना था और सभी को अपनी ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ अपनी टीम की ज़िम्मेदारियों का भी पता था।

मैं भाग्यशाली रही कि 1980 के दशक में मुझे भारतीय अन्टार्कटिक कार्यक्रम का हिस्सा बनने का मौका मिला। अन्टार्कटिक जाना हर समुद्रविज्ञानी का सपना होता है, लेकिन वहाँ जाना किसी जंग से कम नहीं था। इस कार्यक्रम के जनक डॉ एस ज़ेड कासिम ने मुझसे कहा कि इतने लम्बे अभियान पर महिलाओं को भेजने को लेकर वे ज़रा चिन्तित हैं। मैंने तुरन्त ही तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी को लिखा कि मैं पर्याप्त योग्यता रखने वाली समुद्री विज्ञानी हूँ और मैं ज़रूरी प्रायोगिक कार्य की रूपरेखा बनाने और उसे संचालित करने में पूरी तरह सक्षम हूँ। क्या उनकी भी यह सोच नहीं थी कि इस तरह के महत्वपूर्ण कार्यक्रम से महिलाओं को अलग रखना अन्याय है? यह स्पष्ट है कि इन्दिरा गाँधी ने अपनी सहमति दी क्योंकि मुझे और डॉ सुदीप्ता सेनगुप्ता को तीसरे अभियान में शामिल कर लिया गया। यह हमारी प्रगति का संकेत है कि आज ऐसे कार्यक्रमों में (या अन्तरिक्ष यात्राओं में भी) महिलाओं को शामिल किए जाने पर सामान्यतः कोई सवाल नहीं उठाता।

एनआईओ में कई साल बिताने के बाद 1990 में मैं पुणे स्थित राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला (एनसीएल) में आ गई। मैंने अगले 15 साल खाद्य श्रृंखला में शामिल लवण सहनशील और लवण प्रेमी सूक्ष्म जीवों (माइक्रोब) में एन्ज़ाइम बनने की प्रक्रिया का अध्ययन करने में बिताए। एनसीएल में मैंने जो काम किया उसकी प्रकृति एनआईओ में किए गए काम से बिलकुल भिन्न थे, लेकिन इसमें भी उतना ही मज़ा आया बल्कि मेरे लिए यह तय करना मुश्किल है कि मुझे ज़्यादा मज़ा किसमें आया!

मैं बीते सालों में अपने काम का इतना आनन्द लिया है कि जब मैं अपने कार्यक्षेत्र में कदम रखने की कगार पर खड़ी किसी लड़की के बारे में सोचती हूँ, तो मेरा मन होता है कि उससे कहूँ, “शाबाश बेटा, आगे बढ़ो, यह पृथ्वी तुम्हारी है!”

मेरी दिलचस्पी

प्रदूषण और ग्लोबल वॉर्मिंग के बढ़ने के कारण पादप प्लवकों और प्राणि प्लवकों की कितनी प्रजातियों की प्रजनन क्षमता प्रभावित होगी और वे लुप्त हो जाएंगे। अगर इसी सवाल को मैं थोड़े अलग ढंग से पूछूँ: क्या प्लवकों की आनुवांशिक संरचना ऐसी है कि वह बढ़ते वैश्विक तापमानों के अनुरूप अपने आप को ढालती जाए और इन स्थितियों से उभरने वाले नए जीव कैसे दिखेंगे? मुझे लगता है कि यह अध्ययन बड़ा रोमांचक होगा।

अंग्रेजी से अनुवाद - भरत त्रिपाठी

मंदाकिनी दूबे और राम रामस्वामि द्वारा संपादित, ‘*द गर्ल्स गाईड टु ए लाईफ इन साईन्स*’, ज़ुबान द्वारा प्रकाशित, पर आधारित

बाबूलाल होटल में लम्बे डग वाले लड़के का रुकना।

विनोद कुमार शुक्ल

बात शुरू हुई जब भैरा ने कहा, "लम्बे डग वाला लड़का बजरंग होटल में रुक सकता है।"

बोलू ने कहा, "वहाँ ठीक नहीं होगा। बजरंग होटल के अन्दर आसमान की छत कहीं नहीं है। पर बालूलाल होटल आसमान की छत के साथ बनी है।" एक बहुत बड़े मैदान में केवल एक पल्ला लगाकर होटल बना है। होटल की पहचान है कि होटल के अन्दर मैदान है, जंगल है। वहाँ रहने वाले सभी पशु-पक्षी, कीड़े महराज के अतिथि हैं। वहाँ पैसा नहीं लगता। पक्षी दूर-दूर से आकर ठहरते हैं। हो सकता है पीछे भी होटल से बाहर निकलने सामने वाले दरवाजे का दूसरा पल्ला वहाँ लगा हो। पीछे के पल्ले की जानकारी नहीं है।

होटल के अन्दर के तालाब में बड़े-बड़े कछुए थे। ठण्ड के दिनों में धूप तापने बाहर आ जाते थे।

कूना ने कहा, "बजरंग होटल में पैसे लगते हैं।"

भैरा ने कहा, "मर्जी हो तो पैसे दो। उधारी जैसे उधारी नहीं होती। जिसको जितना भुगतान करना होता है, उतना उससे कभी न कभी खो जाता है तो सिक्के गल्ले में चले जाते हैं। ज़्यादा सिक्के गिर गए तो बचे सिक्के मिल जाते हैं। सब उनसे डरते हैं जैसे शेर से डरते हैं। मैं उनका बेटा हूँ, मैं भी डरता हूँ। शेर से कम डरता हूँ।"

लम्बे डग वाल लड़के ने कहा, "मैं भी कभी डर जाता हूँ।"

भैरा ने कहा, "वहाँ जाकर तुमको बिना बोले रहना पड़ेगा। तुम ज़ोर से बोलते हो और बजरंग महराज दहाड़ते हैं।"

बोलू ने कहा, "चलो! बाबूलाल महराज की होटल चलते हैं।"

सब चले। दिन का समय अभी भी था। लगता है बच्चों के खेल में दिन भी शामिल हो जाता है। दिन को याद भी नहीं रहती कि शाम को आना है। जब तक बच्चे खेलते हैं दिन रहता है और बच्चे दिन-भर खेलते हैं। फिर खेलने को शाम आ जाती है।

होटल के मैदान में यद्यपि कहीं से भी घुसा जा सकता था पर दरवाज़े से जाने का ही नियम था, जब एक पल्ले का दरवाज़ा खुला हो। अन्दर जाने का नियम सबके लिए था। पक्षी, जानवर, कीड़े-मकोड़े सबके लिए।

देखू ने दरवाज़े के कुछ दूर पहले सब को रोक दिया। पंक्ति से अन्दर जाना था। एक मोटा अजगर बहुत धीरे-धीरे अन्दर जा रहा था। उसके पीछे लाल चीटियों की एक लम्बी पंक्ति रुकी थी। पंक्ति के पीछे एक छिद्र था जहाँ से चीटियाँ निकली थीं। चींटियों ने फिर सोचा होगा कि सामने अजगर गया है, अभी जाना उचित होगा या नहीं। अचानक चींटियों ने पलटकर छिद्र के अन्दर जाना शुरू कर दिया।

खड़े-खड़े कूना को जँभाई आ रही थी।

भैरा ने कहा, "चलो लौट चलते हैं।"

तभी अन्दर से महराज की आवाज़ आई, "रुक जाओ, जाना नहीं। थोड़ी देर और।"

वे सब खड़े रहे। उनके पहले अभी एक केकड़ा अन्दर जा रहा था। उसके पीछे एक बगुला खड़ा था। इसके बाद भैरा खड़ा था। भैरा का पैर ठीक हो गया था परन्तु भैरा का मन लँगड़ाकर चलने का था। बोलू के पीछे लम्बे डग वाला लड़का था।

सब अन्दर आ गए। बाबूलाल महराज टेबल के पास खड़े, कुछ लिख रहे थे। कूना को देखा, उससे कुछ कहने को थे। "कहीं भूल न जाऊँ" कह कर फिर लिखने लगे। इतने में कंधारू आ गया। लम्बे डग वाले लड़के को देखकर, वह पास से देखने आया था।

अजगर पता नहीं कहाँ चला गया था। कंधारू ने उसे तौलकर, रहने के लिए उसके ठिकाने छोड़ आया होगा। बगुला,

कंधारू के कन्धे पर बैठा था, फिर उड़ गया। लम्बे डग वाला लड़का अपने आस-पास, दूर तक की चहलकदमी कर रहा था। बगुले के पंख फड़फड़ाने से कंधारू के बाल इधर-उधर बिखर जाते। इस परेशानी से बगुले का वज़न लेने में कंधारू को कठिनाई हुई थी।

महराज ने सिर उठाकर सबको अच्छी तरह से देखा। कूना, बोलू और उनके साथियों को देखकर वे खुश थे। “क्या बात है! समोसा खाना है?”

“नहीं! महराज जी क्या होटल में जगह है?” बोलू ने पूछा।

“मेरी होटल एक दुनिया है। दुनिया में सबके बसने की जगह है। चाहे एक दिन या जीवन भर।”

बोलू ने लम्बे डग वाले लड़के की तरफ इशारा कर कहा, “इनके ठहरने लायक जगह हमारे घर में नहीं। हमारे मित्र हैं। आपके यहाँ ठहर सकते हैं?”

“हाँ! हाँ! कंधारू इन्हें ठहरा लो,” बाबूलाल महराज ने कहा।

“जी, महराज!”

“आइए जहाँ मन हो ठहर जाएँ,” कंधारू ने लड़के से कहा।

महराज ने लड़के को बुलाया बुलाया, “बाबू मेरे पास तो आओ।” वह आया।

उन्होंने पूछा, “क्या तुमने मेरी होटल का मीठा समोसा पहले कभी खाया था? तुम ऊँचे लम्बे हो इसलिए पूछ रहा हूँ।”

“नहीं। मैंने नहीं खाया। मुझे याद भी नहीं। पर बताएँ, क्या आपकी होटल में ऐसा समोसा मिलता है जिसे खाकर मैं

अपने मित्रों के बराबर हो जाऊँ," लम्बे डग वाले लड़के ने कहा।

महराज ने दुखी होकर कहा, "नहीं। ऐसा समोसा नहीं है।"

लम्बे डग वाले लड़के ने फिर कहा, "तो मेरे मित्रों को समोसा खिलाकर मेरे जैसा लम्बे डग वाला बना दें। ताकि, हम साथ-साथ दौड़कर खेल सकें।"

"मैं तो दौड़ लगाता रहता हूँ। किसी के भी साथ। कछुए के साथ भी। तुम्हारे साथ भी लगा सकता हूँ। अभी तुम्हारा वज़न ले लें।"

"कंधारू! बाबू का वज़न लो," महराज ने कहा।

"मैं इसे कन्धे पर नहीं बैठा सकता," कंधारू ने कहा।

"तो कन्धे पर खड़ा कर लो," महराज ने कहा।

कंधारू ने लड़के से कहा, "मेरे कन्धे पर खड़े हो जाओ।"

लड़के ने संकोच से कहा, "मेरा वज़न बहुत है।"

कंधारू, "कोई बात नहीं, मेरा काम तौलना है।"

कंधारू के पीछे जाकर लड़के ने कंधारू के बाएँ कन्धे पर अपना बायाँ पैर रखकर खड़ा हुआ और क्षणभर में उसने दूसरा पैर उसके दूसरे कन्धे पर रख दिया।

महराज ने कहा, "एक ही कन्धे पर दोनों पैर रखो बाबू।"

दाहिने कन्धे से पैर उठाकर उसने बाएँ कन्धे पर रख लिया। बाएँ कन्धे पर दोनों पैर थे। बायाँ कन्धा झुक गया था। कंधारू ने दाहिने हाथ से अपने सिर के बाल समेटकर दाहिने कन्धे पर रखना चाहा। तब महराज ने उसके सिर के बालों को कन्धों पर इधर-उधर किया। जिससे दोनों कन्धे बराबर हो गए तब कागज़ पर पेंसिल से कुछ लिख लिया।

अब ऊँचाई भी नापनी थी।

महराज जी ने लड़के से कहा, "बाबू सामने उस ऊँचे, सीधे सागौन के पेड़ से लगकर खड़े हो जाओ और इस छुही मिट्टी से उस पर निशान लगाकर यह पीला कपड़ा बाँध देना।"

लड़के ने यही किया।

महराज ने कहा, "बाद में तुम्हें यहाँ आकर बताना पड़ेगा, इसलिए इस पेड़ और चिह्न को याद रखना।"

पर कंधारू ऊँचाई नापने, एक बाँस लाया था। यह देख महराज ने कहा, "यह बहुत छोटा है।"

इस बाँस से अभी तक सबकी ऊँचाई नापी जाती थी और बाँस से अभी तक जो आए सभी छोटे थे। बाबू से बाँस बहुत छोटा था।

बरसात के दिन निकट आ गए थे। महराज को लगा था कि आँधी-तूफ़ान से ऊँचाई पर बँधा कपड़ा निकल न जाए।

महराज, ऊँचाई नापने के लिए मैना की भी सहायता लेते थे। मैना की याददाश्त अच्छी थी। जब कुछ ज़रूरी होता तभी वे मैना को बुलाते पर मैना कभी होती, कभी नहीं होती। उसे खबर भेजनी पड़ती।

मैना जिसकी ऊँचाई नापती उसको देखकर याद रखती। दुबारा आता तो उसकी पहले नापी ऊँचाई बता देती। उसे सैकड़ों नाम याद थे और मैना नापने का काम फुलचुक्की की उड़ान से करती। फुलचुक्की की उड़ान जिसकी ऊँचाई नापनी होती उसके पैर से सिर तक एक लम्ब की तरह सीध में होती। वह उड़ते हुए हवा में स्थिर हो जाती थी। उसके पंख की फड़फड़ाहट लम्ब की उड़ान में जितनी होती मैना उसे गिन लेती थी। फुलचुक्की के पंख छोटे-छोटे थे। इसलिए नाप बारीकी से होते थे। मैना अपनी उड़ान से टीलों, पहाड़ को नाप सकती थी। पर बहुत ऊँचाई को नहीं। चील को महराज अपने होटल के आस-पास भटकने नहीं देते थे। खरगोशों को चील से अधिक खतरा था। चील ने झपट्टा मारकर पँज़ों में खरगोश को दबोच लेता। खरगोश अपने बिलों के मुहाने के आस-पास ही रहते और बिल जगह-जगह थे।

महराज लम्बे डग वाले लड़के को बाबू कहने लगे, तो सब बाबू कहने लगे। लम्बे डग वाला लड़का अपना नाम बाबू ही बताया जब मैना ने नाप लेते समय नाम पूछा था। बाबू की ऊँचाई फुलचुक्की ने अपनी उड़ान से ली और मैना ने फुलचुक्की के पंखों की फटफड़ाहट की गिनती लगाई। मैना ने बाबू के चेहरे के साथ

उसकी लम्बाई को भी याद कर लिया था।

महराज ने बाबू से कहा, "थक गए होगे। आराम कर लो। आठ साल की उम्र में कुछ पृथ्वी नाप ली होगी।"

बाबू ने कहा, "थका नहीं।" कह कर वह सागौन के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया और पेड़ से अपनी पीठ टिका आँखें मूँद लीं। उसे लग रहा था कि समय छोटा हो रहा है। अतीत, वर्तमान और भविष्य छोटे हो रहे हैं। यहाँ तक की अनन्त भी छोटा हो रहा है।

लम्बे डग वाले लड़के का तो अतीत केवल आठ वर्ष का था। क्या जितनी उम्र होती है उसका उतना ही अतीत होता है? बड़ा होना तो सबकी अतीत से बनी परम्परा में होता है। वर्तमान में अतीत एक वसीयत की तरह होता है। इस वसीयत की हिफाज़त सब की ज़िम्मेदारी थी। यह अपनी-अपनी मनुष्यता की भी हिफाज़त थी। ताकि मनुष्यता भविष्य तक बनी रहे।

एक दिन-

नाले जितनी चौड़ी पर गहरी नदी को छलाँग मारकर पार तो किया जा सकता है एक छोटा पुल उस पर बना दिया जाए तो। रस्सी का पुल या सूखे पेड़ को उसके ऊपर रख दिया जाए। पुल बन जाने के बाद छोटे-छोटे जीवों का आना-जाना भी शुरू हो जायेगा। दोनों पार आपस में जुड़ जाएँगे।

जंगल में आँधी से उखड़े पेड़ तो पड़े रहते थे। लम्बे डग वाले लड़के के साथ सब गिरे पेड़ों को ढूँढने लगे।

लम्बे डग वाले लड़के ने चार गिरे पेड़ों को उठाकर बिछा दिया। सब ने मिलकर दोनों तरफ खूँटे गाड़े, उसमें रस्सी बाँध दी। रस्सी पकड़कर पुल पर चलने से गिरने का डर नहीं था। सब ने देखा - कुछ देर में चींटियों ने आना-जाना शुरू भी कर दिया। पुल बन जाने के बाद सब खुश थे।

अचानक कूना ने चिल्लाकर कहा, "पुल से जंगली भैंसे इस तरफ आ गए तो?"

सुनकर भैरा के मुँह से निकला, "यह तो हमने सोचा ही नहीं था। अब क्या करें?"

लम्बे डग वाले लड़के ने कहा, "मैं दूर तक दौड़ लगाकर चुप्पी जगह देख आया था, पर मुझे जंगली भैंसे कहीं दिखे नहीं थे।"

कूना ने कहा, "इतनी सारी भैंसे कहाँ चली गईं? हो सकता है कि इन जंगली भैंसों को दूध के लिए बजरंग होटल ने पाल रखा हो!"

सुनकर भैरा ने कूना की बात को अनसुना कर दिया और वहाँ से हट गया।

बोलू ने और सब ने फिर कहा, "कुछ नहीं होगा। देखा जाएगा।"

कुछ देर पुल से सब बार-बार आना-जाना करते रहे। खेल करते।

भैरा को वैसे भी इशारे से बात करना अच्छा लगता था। वह उस पार इशारे से बात करता और इस पार भी। और इस पार की प्रत्येक बात को वह अनसुना कर देता। ताकि दूसरे, इशारे से बात करें।

यह देख बोलू ने भैरा से कहा, "भैरा, उस पार तो चुप्पी जगह है। इशारे से इस पार भी बात करते हुए, तुम इसे चुप्पी जगह बना दोगे।"

भैरा को लगा कि अभी अनसुना करना ठीक नहीं।

(जारी...)

चित्र : हबीब अली

—गणेश भारती, 6वीं, बाल निकेतन स्कूल भोपाल, म. प्र.

—नैंसी कुमारी, दीपालया लर्निंग सेंटर नोएडा, उ. प्र.

रितु गोयल

मुझे लगता है कि मैं उड़ सकती हूँ

यह कहानी है भारत की पहली महिला ब्लेड रनर की। प्रेरणादायी और दृढ़ इच्छा शक्ति से भरी महिला, किरण कनौजिया की। उसकी यह असाधारण कहानी है जीत की, तमाम बाधाओं के बावजूद अपने सपनों को पूरा करने की, अपने आलोचकों को करारा जवाब देने की, खुद पर यकीन करने की और कहने की, कि 'हाँ, मैं यह कर सकती हूँ!'

भाग – 1

अपने सपनों को पूरा करने का संघर्ष

किरण का जन्म फरीदाबाद, हरियाणा के एक कम आमदनी वाले परिवार में हुआ था। उसके माता-पिता की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी और उनके लिए तो किरण की स्कूल की फीस भरना ही एक बड़ी चुनौती थी। किरण के समुदाय में लड़कियों की पढ़ाई को कोई तवज़्जो नहीं दी जाती थी। फिर भी कपड़ों को प्रेस करके अपनी रोज़ी-रोटी कमानेवाले उसके माता-पिता ने उसे दुनिया का सबसे बड़ा तोहफा दिया और यह तोहफा था, सपने देखने की...बड़े सपने देखने की ताकत और उन सपनों को हकीकत बनाने का हौसला।

किरण यह जानती थी कि उसके माता-पिता को उससे बहुत उम्मीदें थीं और उसे पढ़ाकर वे रीति-रिवाज़ों और परम्पराओं के खिलाफ चुपचाप विद्रोह कर रहे थे। भले ही उसकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी फिर भी वह आगे और पढ़ना चाहती थी। अच्छे कॉलेज में जाना चाहती थी ताकि उसे एक अच्छी नौकरी मिल सके। एक पड़ौसी, डॉ अदल खाँ- जिनके कपड़े भी किरण के माता-पिता इस्त्री किया करते थे, ने किरण में सम्भावनाएँ देखीं और उसकी बहुत मदद की। किरण ने खूब मेहनत की और अपने दृढ़ संकल्प के बल पर उसने यूनिवर्सिटी में पहला स्थान प्राप्त किया। किरण को 2009 में केम्पस प्लेसमेंट के ज़रिए हैदराबाद में भारत की प्रमुख सॉफ्टवेयर कम्पनी, इन्फोसिस में टेस्ट इंजीनियर की नौकरी मिल गई।

आज किरण भले ही खिलाड़ी बन गई हो, लेकिन बचपन में वह खेलों में कोई बहुत ज़्यादा भाग नहीं लेती थी। बल्कि वह कभी पेशेवराना तौर पर दौड़ी भी नहीं थी। वह बताती है, " स्कूल में तो मैं तो बस पीटी में भाग लेती थी और कभी-कभार बास्केटबॉल वगैरह खेल लेती थी। मेरा ज़्यादा ध्यान तो अपनी पढ़ाई पर ही रहता था। क्योंकि उसमें मैं वाकई अच्छा करना चाहती थी।"

भाग - 2

दुर्घटना ने मेरा पैर मुझसे छीना, मेरी हिम्मत और हौसला नहीं

दिसम्बर 2011 में किरण हैदराबाद से ट्रेन द्वारा अपने घर फरीदाबाद आ रही थी। वह अपने जन्मदिन के ठीक पहले घर पहुँचकर माता-पिता से मिलने को लेकर बहुत आतुर थी। दिल्ली पहुँचने में कुछ ही स्टेशन बचे थे कि दो बदमाश धीरे-धीरे चल रही ट्रेन में चढ़ गए और उनमें से एक ने किरण की पीठ पर टंगा बैग खींचा, बिना यह देखे कि बैग किरण के कन्धे पर बँधा हुआ था। वह खड़ी हुई, बैग को वापस अपनी तरफ खींचने की कोशिश की, लेकिन खुद ही धीरे-धीरे ट्रेन के दरवाज़े की तरफ खींचती गई। इतने में दूसरे बदमाश ने उसे धक्का दिया और वह ट्रेन से नीचे गिर गई। नीचे गिरते वक्त उसका बायाँ पैर दरवाज़े में फँस गया और चकनाचूर हो गया। बाकी यात्रियों ने उसे वापस ट्रेन में चढ़ाया और बाद में रेलवे पुलिस उसे अस्पताल ले गई।

अपने जन्मदिन, यानी 25 दिसम्बर, 2011 को दोस्तों से खुशियों भरी मुबारकबाद लेने की बजाए वह अस्पताल के पलंग पर पड़ी थी, जहाँ उसे अपने बाएँ पैर को काटने के लिए अनुमति पत्र पर साइन करना था... और उसके पास ऐसा करने के अलावा कोई चारा भी नहीं था। वह बताती है, “मैं बहुत डरी हुई थी... सब कुछ इतना जल्दी हो रहा था। दर्द असहनीय था। मेरे मन में ढेर सारे सवाल उमड़ रहे थे। लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे? इसके बाद वे मुझे किस तरह देखेंगे? मुझे लगा जैसे मेरी ज़िन्दगी ही खत्म हो गई हो... अनुमति पत्र पर साइन करते समय मैं लगभग बेसुध हो गई थी।” वह चुपचाप अपने पलंग पर पड़ी थी। लेकिन उसके माता-पिता बराबर उसके साथ थे। यह उसके जीवन और उसके पैर में से किसी एक को चुनने का फैसला था। उसके पिता ने उसे सुधा चन्द्रन का उदाहरण दिया, जिनका एक पैर कट जाने के बावजूद वे बहुत सफल नृत्यांगना और अभिनेत्री हैं। किरण के एक नज़दीकी अंकल ने उसे समझाया कि वह कृत्रिम पैर के सहारे भी नए सिरे से ज़िन्दगी शुरू कर सकती है। इसके अगले साल किरण शारीरिक रूप से तो इस हादसे से उबर गई लेकिन उसके मानसिक दशा बहुत ज़्यादा बिगड़ गई थी। “मैं बहुत हताश और उदास थी,” वह बिना किसी हिचक के बताती है। ऑपरेशन के बाद पहले तीन महीने तो उसकी हिम्मत ही नहीं हुई कि वह अपने पैर की तरफ देखे। “मुझे ऐसा लगता था जैसे मेरा कट चुका पैर अभी भी अपनी जगह पर हो...” वह बताती है।

मानो इतना ही काफी नहीं था। जब किरण जाँच के लिए एक बार अस्पताल गई और उसने पैर में बहुत तेज़ दर्द की शिकायत की तो पता चला कि उसके पैर के बचे हुए हिस्से की खाल को सिलने के लिए उपयोग की गई कुछ स्टेपलें निकाली ही नहीं गई थीं और वे उसकी माँसपेशियों में बैठ चुकी थीं, जिसकी वज़ह से दर्द हो रहा था। एक डॉक्टर ने तो बहुत ही बेरुखी से और बेपरवाह होकर यह कह दिया कि चूँकि उसे कभी दौड़ना नहीं था इसलिए भविष्य में इन स्टेपलों से कोई दिक्कत नहीं होगी। “लोग आपसे क्या कहते हैं, आप वह तो भूल सकते हो लेकिन वे आपको कैसा महसूस कराते हैं उसे कभी नहीं भूल सकते। मुझे तब तो यह समझ नहीं आया था लेकिन कहीं न कहीं उस डॉक्टर को गलत साबित करने की बात मेरे दिमाग में घर कर गई थी और मैंने उसे गलत साबित करके दिखाया” किरण कहती है।

इस हादसे के बाद वह वापस हैदराबाद गई और अपना काम करने लगी। उसे संदेह था कि वह फिर कभी चल भी पाएगी या नहीं। फिर किसी ने दक्षिण रिहेबिलिटेशन सेंटर (पुनर्वास केन्द्र) से उसका

डिज़ाइन : इशिता देबनाथ बिश्वास

सम्पर्क कराया। इसी संगठन ने उसे कृत्रिम पैर और रनिंगब्लेड (जिसे पहनकर दौड़ा जा सकता है) दिलवाया। "उन्होंने मुझे 'चलना सिखाया', ठीक उसी तरह जिस तरह बच्चों को सिखाया जाता है। इस संगठन ने न सिर्फ मेरा हौसला बढ़ाया बल्कि मुझे एहसास कराया कि उस दुर्घटना के बाद भी मेरी ज़िन्दगी खत्म नहीं हुई थी," वह बताती है। किरण के जीवन में अब एक नया उत्साह पैदा हो गया था। एक और चीज़ जिसने उसकी मदद की वह था ध्यान। "मैंने अपने विचारों पर नियंत्रण करना शुरू कर दिया और मुझे एहसास हुआ कि इससे मुझे कितना बल मिला था। मैंने अपनी नई ज़िन्दगी की तरफ छोटे-छोटे कदम बढ़ाना शुरू किया। उस हादसे ने मेरा पैर ज़रूर मुझसे छीन लिया था लेकिन मेरा जोश और जज़्बा नहीं छीन पाया था," किरण कहती है।

भाग – 3

दौड़ना मेरी ज़िन्दगी है

'आप चल तो सकती हैं, लेकिन कभी भी दौड़ नहीं सकेंगी।' डॉक्टर के गैरज़िम्मेदार ये शब्द लम्बे समय तक किरण के मन में गूँजते रहे थे। जब किरण उस दुर्घटना के बाद निराशा और अवसाद में डूबी हुई थी तो उसने 2012 के पैरालिंपिक खेलों में ऑस्कर पिस्टोरियस की उपलब्धियों से प्रेरणा ली। वह भी कुछ हासिल करना चाहती थी...बजाए कि सिर्फ घर बैठे अपनी अक्षमता को कोसते रहने के। जब वह दक्षिण रिहेबिलिटेशन सेंटर में थी तो उसे अपने अंग खो चुके लोगों के लिए दौड़ और साइकिल चलाने जैसी कई तरह की गतिविधियों के बारे में जानने को मिला। उसने शुरुआत में साइकिल चलाना शुरू किया ताकि शरीर का सन्तुलन बेहतर हो सके और फिर दौड़ना शुरू किया। 'हैदराबाद रनर्स' नाम के समूह ने उसे ट्रेनिंग देनी शुरू की जिससे उसकी सहनशक्ति, दमखम और शारीरिक क्षमता को बेहतर बनाया जा सके।

"जब मैंने अपनी ब्लेड पहनकर दौड़ना शुरू किया था तो मैं 400 मीटर तक भी नहीं भाग पाती थी। फिर धीरे-धीरे मैं 5 किमी तक और फिर 10 किमी तक दौड़ना शुरू किया," किरण बताती है। जब उसने ज़्यादा लम्बी दूरी तक दौड़ना शुरू किया तो उसे बहुत ज़्यादा दर्द झेलना पड़ा। "जहाँ से मेरा पैर काटा गया था, उस हिस्से और ब्लेड के बीच हो रही रगड़ बहुत दर्दनाक थी, लेकिन मैं दौड़ पूरी करना चाहती थी। दौड़ पूरी करने में समय कितना लग रहा था उससे मुझे मतलब नहीं था, मुझे बस दौड़ पूरी करना थी। और जब मैंने दौड़ पूरी कर ली तो मेरी दुनिया बदल चुकी थी। मैं आत्मविश्वास से भर गई थी," किरण कहती है। अपनी पहली हाफ मैराथन पूरी करने के बारे में किरण कहती है, "जब बच्चा पहली बार किसी काम को पूरा करता है तो उसे जो निर्मल आनन्द मिलता है, मुझे भी वैसा ही लगा था। मेरी सारी निराशा और अवसाद जाता रहा।"

"लोग मुझसे पूछते हैं 'आप क्यों दौड़ती हैं?' दुर्घटना से पहले मैं 9 से 5 काम किया करती थी – कॉरपोरेट में काम करने वालों की आम ज़िन्दगी जी रही थी और घर से ऑफिस और ऑफिस से घर, बस यही मेरी दुनिया थी। मैं भी पैसा कमाने और कैरियर में सफलता हासिल करने के पीछे भाग रही थी पर उस हादसे के बाद मेरी ज़िन्दगी पूरी तरह से बदल गई। मैं अब दूसरों के लिए प्रेरणा बन चुकी हूँ। चाहे बच्चे हों, अपने अंग खो चुके दूसरे लोग हों या अक्षमताओं वाले लोग हों। अब मेरे पास ज़िन्दगी को अलग ढंग से जीने का कारण है। मैं खुद के लिए दौड़ती हूँ। मैडल हासिल करने के लिए दौड़ती हूँ। ज़िन्दगी के लिए दौड़ती हूँ। कभी-कभी मैं बस दौड़ पूरी करती हूँ। कभी-कभी अपने सर्वश्रेष्ठ समय में सुधार कर लेती हूँ, लेकिन हर बार मुझे यह एहसास होता है कि मैं जीत गई हूँ।"

अभी तक, किरण ने 6 हाफ मैराथन (21 किमी) दौड़ ली हैं। अपनी पहली हाफ मैराथन उसने 3 घण्टे और 30 मिनिट में पूरी की थी। धीरे-धीरे इसमें सुधार हुआ और उसका सर्वश्रेष्ठ समय, जो उसने 2015 में मुम्बई मैराथन में निकाला था, 2 घण्टे और 44 मिनिट है। "मैं अभी तक फुल मैराथन में नहीं दौड़ी हूँ, पर उम्मीद करती हूँ कि जल्दी ही दौड़ पाऊँगी। अभी तो मैं इन्तज़ार कर रही हूँ कि मेरी रनिंग

ब्लेड दुरुस्त हो जाए और यह उम्मीद भी है कि मुझे एक अच्छा कोच मिल जाए। मेरा एक सपना और भी है कि किसी दिन मैं भारत की तरफ से भाग लेते हुए पैरालिंपिक खेलों में दौड़ सकूँ।"

किरण जब भी ट्रेनिंग करती है, जो कि करीब-करीब रोज़ ही होती है, तो ब्लेड का सॉकेट, पैर के बचे हुए हिस्से में, जहाँ यह जुड़ता है, रगड़ते रहता है जिसके कारण घाव हो जाता है। नियमित रूप से दौड़ने वाले किरण जैसे धावकों के लिए यह ब्लेड साल भर ही चल पाती है। इसके बाद ब्लेड का आकार बिगड़ जाता है जिससे और चोटें लगती हैं। इसकी जगह दूसरी ब्लेड लगाना यानी 4 लाख रुपए का खर्चा, जो किरण के लिए आर्थिक रूप से एक बड़ी चुनौती है। चोट खाना, उससे उबरना और दर्द से जूझने के उपाय करना, ये सब बातें किरण की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का हिस्सा बन गई हैं। पर उसने इन सभी बातों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया है।

किरण का मानना है कि किसी को भी जीवन में कभी हार नहीं मानना चाहिए, परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही विपरीत हों। उसका कहना है, "बचपन से ही यह तय हो गया था कि अपने सपनों को पूरा करने के लिए हमें संघर्ष करना पड़ेगा और दृढ़ निश्चय और संकल्प के बिना कुछ नहीं हो सकता। मुझे सबसे ज़्यादा सहयोग मिला अपने परिवार से। उन्होंने कभी मुझे पीड़ित के रूप में नहीं देखा। उन्हें लोगों ने कहा भी कि इस दुर्घटना के बाद मेरे जीवन का कोई मतलब नहीं है क्योंकि एक तो मेरा पैर कट गया है और ऊपर से मैं लड़की हूँ। लेकिन मेरे पिताजी को विज्ञान और तकनीक में तथा बदलते वक्त पर बहुत भरोसा था। उन्हें भरोसा था कि उनकी बेटी न सिर्फ चलेगी बल्कि दौड़ेगी भी। मेरे माता-पिता ने मुझे सिखाया है कि अगर मैं ठान लूँ तो कुछ भी कर सकती हूँ। उन्होंने मुझसे कहा कि तुमने सिर्फ अपने शरीर का एक अंग खोया है, 'तुम्हारा दिमाग तो अभी भी वैसा ही स्वस्थ और आज़ाद है।'" आज किरण एक ऐसी धावक बन चुकी है जिसने अपने रास्ते में आने वाली तमाम रुकावटों को अवसरों में बदलना सीख लिया है। "मैं मानती हूँ कि अगर मैं एक पैर के साथ दौड़ सकती हूँ तो आप भी दौड़ सकते हैं," बड़े दम से यह कहकर किरण विदा लेती है।

ब्लेड रनर

ब्लेड रनर दरअसल ऐसे धावकों को कहा जाता है जो 'रनिंग ब्लेड' पहनकर दौड़ते हैं। रनिंग ब्लेड कृत्रिम अगों का एक प्रकार है। अगर व्यक्ति के शरीर में कोई अंग न हो तो उसकी जगह इन कृत्रिम अंगों को लगाया जा सकता है। रनिंग ब्लेड सबसे पहले 1984 में बनाए गए थे। ये घुटने के नीचे से कटे हुए पैरों और पंजों की जगह ले लेते हैं। इन्हें इस तरह डिज़ाइन किया जाता है कि ये स्प्रिंग की भांति गतिज ऊर्जा का संग्रह कर लेते हैं, जिसकी मदद से इसे पहनने वाले बहुत खूबी से उछल और दौड़ सकते हैं।

अनुवाद - भरत त्रिपाठी और रुद्राशीष

माथा पच्ची

1 तुम्हारे पास दो संख्याएँ हैं 5 व 9। क्या तुम केवल एक गणितीय चिन्ह का इस्तेमाल कर एक नई संख्या बना सकते हो जो 5 से बड़ी हो लेकिन 9 से छोटी हो?

2 एक चौकोर घास के मैदान में 9 घोड़े खड़े हैं। तुम्हें 2 चौकोर बाड़ इस तरह बनानी हैं कि हरेक घोड़े का अपना अलग बाड़ा हो।

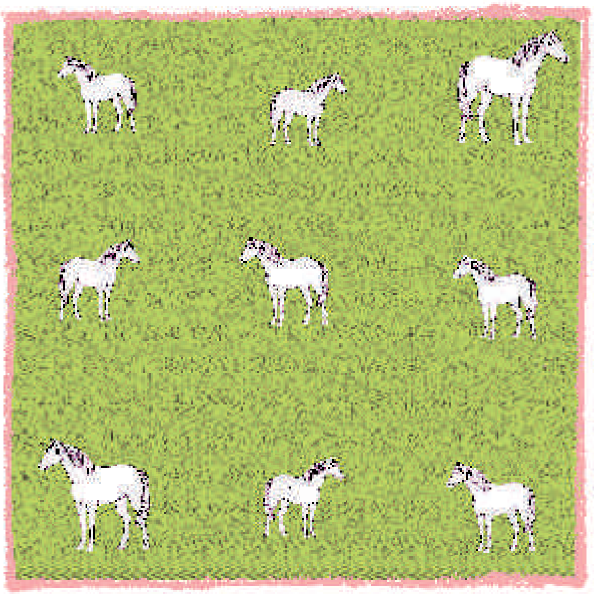

3 पत्थर की नाव पर बैठा सवार
चलती नहीं नाव पर चलता सवार

(सिलबट्टा)

4 14 बत्तखों को 4 तालाबों में इस तरह छोड़ना है कि हर तालाब में पहले वाले तालाब से एक बत्तख ज़्यादा हो। कैसे करोगे?

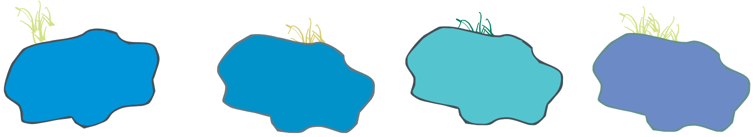

5 तीन चींटियाँ एक ही दिशा में जा रही हैं। पहली चींटी के पीछे दो चींटियाँ हैं, दूसरी चींटी के आगे एक चींटी है और पीछे एक चींटी है लेकिन तीसरी चींटी के आगे भी एक चींटी है और पीछे भी। यदि वहाँ केवल तीन चींटियाँ हैं तो ऐसा कैसे हो सकता है?

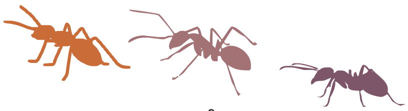

सुडोकू

दिए हुए बॉक्स में 1 से 4 तक के अंक भरना। आसान लग रहा न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने। अंक भरते समय हमें यह ध्यान रखना है कि 1 से 4 तक के एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराएं न जाएं। साथ ही साथ, इस बड़े डब्बे में आपको चार डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि उन डब्बों में भी 1 से 4 तक के अंक दुबारा न आएं। थोड़ा कठिन लग रहा? करके तो देखिए, जवाब अगले अंक में आपको मिल जाएगा।

सुडोकू

			3
	4		
		1	
2			

सुडोकू

1	3	4	2
2	4	1	3
4	2	3	1
3	1	2	4

पिछले अंक का जवाब

चित्र पहेली 10

▶ बाएँ से दाएँ

▼ ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

लोहा

एकान्त श्रीवास्तव

जंग लगा लोहा पाँव में चुभता है
तो मैं टिटनेस का इंजेक्शन लगवाता हूँ
लोहे से बचने के लिए नहीं
उसके जंग के संक्रमण से बचने के लिए
मैं तो बचाकर रखना चाहता हूँ
उस लोहे को जो मेरे खून में हैं
जीने के लिए इस संसार में
रोज़ लोहा लेना पड़ता है
एक लोहा रोटी के लिए लेना पड़ता है
दूसरा इज़्ज़त के साथ
उसे खाने लिए
एक लोहा पुरखों के बीज को
बचाने के लिए लेना पड़ता है
दूसरा उसे उगाने के लिए
मिट्टी में, हवा में, पानी में
पालक में और ख़ून में जो लोहा है
यही सारा लोहा काम आता है एक दिन
फूल जैसी धरती को बचाने में

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल